संकलन : दो

साहित्य के हंस

गाँधी-चिन्तन की साहित्यिक सृष्टि

बंगला कथा-साहित्य के अप्रतिम चितेरे

हिन्दी उपन्यास के अमिट अध्याय

रचना-वाङ्‌मय शरीर जिनका

अभय साधक

आकाशवाणी
विविधा

डा० बाबा आमटे

हरिवंशराय बच्चन

उपेन्द्रनाथ अश्क

विभूतिभूषण मुखोपाध्याय

विष्णु प्रभाकर

अमृतलाल नागर

आकाशवाणी प्रकाशन

आकाशवाणी महानिदेशालय

नई दिल्ली - 110 001

॥ आकाशवाणी विविधा ॥

संकलन : दो

आकाशवाणी प्रकाशन

आकाशवाणी महानिदेशालय नई दिल्ली--1

सम्पादक मण्डल
आकाशवाणी प्रकाशन :
□ श्री मधुकर लेले
□ डॉ० राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी
□ डॉ० गंगेश गुंजन

अंक: जनवरी-मार्च 1993 ई०

आवरण-शिल्पी : श्री नारायण बड़ोदिया

मूल्य: 32.00 रुपये

विक्रय केन्द्र : प्रकाशन विभाग
सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली--110001
कामर्स हाउस, करीमभाई रोड बालार्ड, पायर, बम्बई-- 400038
8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता--700069
एल०एल०ए० आडिटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास--600002
बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना--4
निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-- 695001
10 बी० स्टेशन रोड, लखनऊ-- 226004

सम्पादकीय पता:–
कमरा संख्या: 136 - ए,
आकाशवाणी भवन (पहली मंजिल)
संसद मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3710006-136

मुद्रक : डी० के० प्रिंटर्स, नई दिल्ली-110015

॥ प्रस्तावना ॥

विविधा का पहला संकलन आपकी आँखों से गुजरा होगा। अनेक पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हमें प्राप्त हुई हैं, जिनसे स्वभावतः हमें प्रसन्नता और इसके अगले संकलनों के लिए प्रेरणा मिली है।

पहले संकलन में आप जिन वरेण्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की आकाशवाणी - जीवनी के संपादित मार्मिक अंश पढ़ चुके हैं, उसी शृंखला की कुछेक अन्यान्य आकाशवाणी-जीवनी की विस्तृत रिकार्डिंग के संपादित अंश हम इस दूसरे संकलन में प्रस्तुत कर रहे हैं और हमें विश्वास है कि आपके मर्म का संवेदनशील स्पर्श करेंगे।
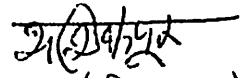
आकाशवाणी के संग्रहालय में ऐसी अनेक रिकार्डिंग सुरक्षित हैं और हमें यह बताते हुए हर्ष है कि इस धरोहर को हम क्रमशः प्रकाशित कर अपने व्यापक श्रोता-पाठक समाज तक पहुँचाएँगे। इतने बड़े कार्यक्रम को अंजाम देने में जाहिर है कि अनेक अनुभवी विशेषज्ञों की अहम भूमिका रही है और इसी प्रसंग में स्वाभाविक रूप से हम श्री गोपालदास जी, आकाशवाणी के पूर्व निदेशक (कार्यक्रम) एवं सिद्धहस्त प्रसारणकर्मी को सादर स्मरण करते हुए उनके योगदान के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करते हैं।

बाबा आमटे जी हों या श्री बच्चन, विष्णु प्रभाकर जी, अमृत लाल नागर, अश्क जी हों या विभूति भूषण मुखोपाध्याय–प्रबुद्ध पाठक समाज में इन सबकी विशिष्ट पहचान बन चुकी है। अतः इनका अलग से परिचय देने की हमें आवश्यकता नहीं लगती।

डा० श्याम सिंह शशि, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के स्नेहपूर्ण सहयोग के भी हम कृतज्ञ हैं। हम श्री एस०एम०चहल को भी धन्यवाद देते हैं।

ऐसे किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य की सफलता कुछेक समर्पित कार्यकर्ताओं के सहज, नियमित सहयोग पर ही निर्भर करती है। हमें इसका संतोष है कि इसके प्रकाशन की उल्लेखनीय परिणति में श्री मधुकर लेले, उपमहानिदेशक, डॉ० राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी, निदेशक (प्रकाशन), श्री जी० रघुराम, निदेशक (प्रत्यंकन एवं कार्यक्रम सेवा), डॉ० गंगेश गुंजन, सहायक निदेशक (प्रकाशन) एवं श्री ब्रजराज तिवारी, सहायक निदेशक (जनसंपर्क) का सक्रिय योगदान रहा है।

"विविधा" अनवरत छपने की राह पर अग्रसर हो चुकी है, अतः हमें विश्वास है कि अगले संकलनों में हम और भी व्यापक रुचि और विषयों तथा विधाओं के साथ आप तक पहुँचेंगे। इसी आशा के साथ यह दूसरा संकलन आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम एक सार्थक संतोष का अनुभव कर रहे हैं।

(शशिकान्त कपूर)
महानिदेशक

॥ विषय क्रम ॥

॥ अभय साधक : बाबा आमटे ॥

अपने महत् कार्यों और मानव-प्रेम के लिए जिन गिने-चुने व्यक्तियों का स्वर्णिम अध्याय लिखा जाएगा, बाबा आमटे का नाम उसमें आदरपूर्वक उद्धरणीय होगा।

विलक्षण, रोमांचक और साहसिक घटनाओं से भरा बाबा आमटे का सारा जीवन अटूट मानवीय आस्था और निर्भय संकल्प-शक्ति का अप्रतिम उदाहरण है। इन्हें सुनकर सहज ही अनुभव होता है कि बाबा आमटे समय की उद्दाम धारा में, जीवनभर समय की ही चुनौती बने बहते रहे हैं और तब अपनी यह कालजयी छवि बनाई है। आने वाले समय के भी कई गंभीर प्रश्नों से वे जूझते रहे हैं।

उनकी यह आत्मकथात्मक विस्तृत रिकार्डिंग उनके निवास स्थान आनन्दवन, वरौरा, नागपुर में दिनांक 11 सितम्बर, 1984 से 14 सितम्बर, 1984 के मध्य हुई।

इनसे बातचीत की है: श्री गोपाल दास साहित्यमर्मी एवं आकाशवाणी के पूर्व निदेशक ने।

॥ अभय साधक : बाबा आमटे॥

प्र०: जब मैं आया था, तो सोच रहा था कि आपसे, आपके जीवन के बारे में जीवन की प्रमुख घटनाओं के बारे में पूछूँगा। लेकिन आपका आत्मकथा में विश्वास नहीं है। मैं यह जानना चाहता हूँ - 70 साल पहले जन्मा मुरलीधर आज बाबा आमटे कैसे बन गया, यह सोच, यह संस्कार और बावजूद इसके कि इतना विरोध हुआ? थोड़ा सा हमको बतायें।

उ०: इसके पीछे बड़ी लम्बी कहानी है। मेरी सारी जिन्दगी जिसको अंग्रेजी में मैंने कहा - "ही ट्रस्टेड मी बिफोर ही अनट्रस्टेड मी" है। जीवन ही ऐसा संघर्षमय रहा। और उसमें मेरे ऊपर संस्कार कुछ पड़ रहे थे - वे संस्कार मुझ पर मेरी माँ ने दिये। पिताजी ने जीवन की किताब पढ़ायी, लेकिन संस्कार, मेरे पर जो है - मेरी माँ का।

अंगूठे बहादुर थीं। अपना नाम भी नहीं लिख सकती थीं। और जो ज्यादा संस्कार मुझ पर इस उम्र में पड़े सो उन्हीं के। अपना मानसिक संतुलन खो बैठी थीं। मेरी माँ, मेरे हाथों से पागलखाने में भेजी गई थीं। इसलिए मेरे जीवन में जो कुछ है वह मेरी पागल माता के बहुत सुन्दर संस्कार से। और तब से मैं सोचने लगा - "टर्न यूओर बैक टुवर्डस द वर्ल्ड एंड द होल वर्ल्ड विल बी एट यूओर बैक"। अरविन्द बाबू जी ने मुझे कहा - "भगवान नहीं है" और बिनोवा जी ने कहा - "दुनिया की ओर पीठ मोड़ दो, सारी दुनिया तुम्हारे पीछे हो जाएगी।" उसके पीछे मेरा जीवन आतुर था क्योंकि मेरी माँ ने मुझे वैसी दीक्षा दी थी। "इट इज गुड टू गैट, बट बैटर टू गिव" - यह मुझे मेरी माँ ने सबक बचपन से दिया। अब आपने पूछी वह संस्कार की बात... ।

दीवाली के दिन थे सब तरफ रौशनी जगमगा रही थी। मेरी माँ ने मेरे गले में सोने का गोक डाला, हाथ में अंगूठी दी और इतने सारे पैसे दिए और बोली - "इस पैसे को खर्च करके आ जाओ। इस रास्ते से सीधा जा।" वह पहले जा चुकी थीं। नगर पालिका के एक नल के पास एक भिखमंगा औंधा पड़ा हुआ था। जंग पड़ा हुआ एक लोहे का डिब्बा लेकर, "जो देवे उसका भला, जो न देवे उसका भला"- ऐसा चिल्ला रहा था। मेरे पास खुदरा (रेजगारी) दिया था मेरी माँ ने। मैं उसमें पूरे - जितने पैसे थे - उसके डिब्बे में डालते गया। डिब्बा पूरा भरकर और नीचे गिर गया। वह मुझे गाली देने लगा -" शैतान लड़के ! आज का त्यौहार का दिन। मैं कह रहा हूँ जो देगा उसका भला, जो न देगा उसका भला। तू उसमें कंकड़ डालकर मेरा मज़ाक कर रहा है?" मेरी आँखों में पानी आ गया और अभी भी आ रहा है। मेरी माँ ने मुझे ऐसा क्यों कहा। इतना विश्वास मुझ पर क्यों डाला। मैंने उसका हाथ लिया और उस डिब्बे को देखा। और मैं बाजू में खड़ा हो गया। वह दस बार उस क्वाइन को गिनता रहा, छोड़ता गया, गिनता रहा - "द स्माइल ऑन हिस फेस। माई इन्टरनल रिवार्ड टू डे -गुड टू गैट, बैटर टू गिव" दीखा। माँ ने दिल में

यह सोचा कि बच्चा कैसा उपयोग करता है। पटाखे लाएगा, मिठाई लाएगा कि क्या करेगा? क्योंकि यह सब वह इम्तहान लेना चाहती थीं।

उसने बताया था मुझे "गुड टू गैट बट बैटर टू गिव" यह समाधान मुझे उससे मिला। मेरा जीवन एक नए मोड़ पर खड़ा हो गया, बचपन से ही।

"ठहरो, रोना नहीं, आज त्यौहार है। याद रखना - वह पगलेपन में मुझे कहती थीं - पाखाना साफ करने वाली को भी पहले खाना देना चाहिए।"

हम आए बाहर से। पहले ही देखा - रोज सफाई करने वाली मेहतरानी। पति, उसके बच्चे, घर के बाहर थे। जातीयता थी सो घर के बाहर ही थे वे। केले के पत्ते पर उनको दिया। फिर हमको खाना दिया।

मेरे घर में जो रिवाज था पहले, आज भी वह रिवाज **आनन्दवन** में चालू है। पहले ड्राइवर की पुकार की जाती है, क्योंकि उसके भरोसे तुम्हारी-हमारी, आने वालों की जिन्दगी सुखमय रहती है। आयु सुरक्षित रहती है। तो मैंने यह कहा कि - मैंने बहुत सम्पन्न जीवन जिया। मेरी माँ ने यह किया, पिताजी ने मेरे यह किया, इस काम को नहीं गिनना चाहिए। पिताजी ने मुझे रेसर गाड़ी भी दी। उन्होंने मेरा भविष्य देखा था कि बड़ा वकील होऊँगा। उन्होंने मुझे मैडिकल कालेज से, साइंस कॉलेज से निकाल दिया और मुझे आर्ट्स कॉलेज में डाला। क्योंकि जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन एक ज्योतिषी आया था और उसने कह दिया - "यह लड़का वकील होगा।" मेरे पिताजी देखते गए (मेरा भविष्य) उस ज्योतिषी के मुताबिक। आज भी मैंने अपने पिताजी को इस बारे में कभी क्षमा नहीं किया। वे बड़े उम्र के थे, तो भी मैंने कहा - मैं डॉक्टर बनना चाहता था - हकीम बनना चाहता था।

तब माँ पागलखाने से लौटी थी -"अरे तुझे डॉक्टर बनना था, किसने मना किया है? तेरे पिता जी ने तुझे वकील बनाया। डॉक्टर क्यों नहीं बनता? शी आलवेज चैलेन्ज्ड एट माइ लाइफ। मैं वकील हुआ। यहाँ आया वकालत की। **आनन्द वन** में बैठा। सब कुछ करके भी बेचैन था। वह तुलसी राम रोगी मुझे दीख पड़ा।. . लिविंग कॉर्पस..

प्र०: उसका सबने वर्णन किया है।

उ०: जी हाँ, देखते ही मुझे हुआ कि मैं सब कुछ कर सकता था लेकिन मेरे में यह कायरता क्यों आई? मुझे डर क्यों लग रहा है? बिलीव मी मेरे सर पर मैले का बर्तन था। मानवीय निष्ठा का इतना बड़ा बोझ मैं ढो रहा था। उसकी घृणा मुझे नहीं थी। लेकिन यह.. जीवन, जिसको "लिविंग कॉर्पस" बोलते हैं, इस जिन्दा शव का मुझे डर लगा। और किसे डर लगा? जिसे बापू ने कहा था - **अभय साधक**, उस बाबा आमटे को, उसको डर लगा। उसको, उसकी नाक से, उसकी आँखों से इल्लियाँ बाहर निकल रही थीं।

लेकिन मेरे दिल को मैंने - स्यूडो कोंसोलेशन जिसे कहते हैं - नकली समाधान देने के लिए कहा -"ओह बेचारा पानी में पड़ा हुआ है। एक मिट्टी की दीवार पर चटिया थी, उसको खींच लिया। मैंने उसको ढँक दिया। स्यूडो सटिस्फैक्शन मुझे मिला। कम-से-कम ऊपर से, पानी से तो उसका संरक्षण किया। क्योंकि वह जिन्दा था। उसकी साँस मैं देख रहा था वह होश में नहीं था वह बोल नहीं सकता था - कहाँ दर्द होता है। आँखों को पोंछ नहीं सकता था। ऐसी अवस्था में उसने मुझे एक बहुत बड़ा चैलेन्ज दिया। एक **अभय साधक** - कायरों का कायर तय हो चुका उस दिन। वह मैले की टोकरी लेकर मैंने कम्पोस्ट पिट में डाल दिया। और घर में आया और मैंने साधना को कहा -"आज से सब छूट गया मेरा। न वकालत है न नगर पालिका है न बैंक है न कुष्टागार है, यह अस्पताल है। जिन्दगी में मुझे कुछ करने का साहस नहीं, क्योंकि मैं कायरों का कायर हूँ और तुम लोगों से मुहब्बत करने में बिलकुल नालायक हूँ। वह कहती है कि -"यह क्या पागल हो गया है?

प्र०: तो ऐसे कैसे बन गए आप?

उ०: मैंने सब कुछ पूरे परिवार को बताया और पाँच छह महीने तक जिसे "एगोनाइजिंग टॉर्चर्स" कहते हैं, मैं वैसी ही बेचैनी, भोगता रहा और एक दिन मेरे दिमाग में यह आया कि खण्डहर में मुझे सौन्दर्य के बदले यह डर क्यों दीखा? यह चिठधुना क्यों दीखा? यह आवर्तक प्रश्न है, भगवान मैं कैसी सूली पर चढ़ा हूँ? ऐसा आक्रोश स्वयं कर रहा था, सब धंधा-काम छोड़ दिया था।

अचानक विचार आया " यदि तेरी पत्नी को, तेरे बच्चे को ऐसी बीमारी हो और उनकी आँख-नाक गल गई हो, उनकी उंगलियाँ चली गई तो तू क्या करेगा? और दो-तीन बार सोचने के बाद मैंने कहा - नहीं, अब यह तुलसी राम ने जो चैलेन्ज दिया है, यह काम किये बिना मैं नहीं रह सकूँगा। तो यह तय हो गया और मुझ बुद्धू को जँच गई बात कि खाली भजन से काम नहीं होता है, खाली कनविक्शन से काम नहीं होता है - कंपैशन चाहिए।"

प्र०: करुणा..

उ०: करुणा चाहिए। और फिर वह करुणा का जो संदेश मुझे मिला, मैं समझता हूँ कि माँ ने मुझे दूध पिलाया उसी वक्त उसको भी..

प्र०: घुट्टी में अपने दूध में आपको पिलाया होगा।

उ०: जी हाँ, जी हाँ दूध से पिलाया होगा। नहीं तो पिताजी वकालत कराना चाहते थे। लेकिन कहीं से जीवन में स्पर्श भी उनके विचारों से मुझे नहीं हुआ। और फिर, जब सरदर्द करता है तब किसी ने बाम, अमृतांजन लगाया तो अच्छा लगता है। जब तक यह दु:ख है तब तक। यह करुणा, जीवन में नहीं रही, कोई मज़ा नहीं, कोई मतलब नहीं उस जीवन का।

मुरलीधर देवीदास आमटे वकालत छोड़ कर कलकत्ता जाता है। वहाँ एक टैम्पेस्ट जैसा उठ जाता है कि यह कंपाउडर भी नहीं है, नीम हकीम है।

प्र०: वहाँ डाक्टर धर्मेन्द्र थे, आपके गुरु?

उ०: जी हाँ। नीम हकीम खतरे जान कह दिया। धर्मेन्द्र मेरे गुरु, उनको भी अवार्ड मिला और मुझे बहुत खुशी है कि मुझे भी मिला। उनको तो और खुशी हुई; मुझसे भी ज्यादा खुशी हुई। वह कहते थे "नीम हकीम है, यह कंपाउंडर नहीं है? हो गए डबल ग्रेजुएट। और (भी) कुछ होंगे, इनका क्या उपयोग है?

मैंने कहा "देखो.. सेवा का कोई इंजेक्शन निकला नहीं है। जिसको यह काम करने की इच्छा होती है उसको दे दिया और सेवा करने लगा गया। जो डॉक्टर हैं और इस काम को (तथापि) नहीं करते। (हमें) आजादी मिल चुकी है.. । अब, मिशनरी लोग आके कितने दिन तक अपनी यह सेवा करेंगे इस देश की? मैं युवा नागरिक कुछ करना चाहता हूँ और आप मुझे चान्स नहीं देते, यह बराबर नहीं है। फिर बिना मैडिकल कॉलेज का मुँह देखे, मुझे सब लोग डॉक्टर आमटे एम०डी० कहते गए।

प्र०: एम०डी० हो गए अपने आप (सम्मिलित हंसी) जन्म से हैं आप?

उ०: दुर्देव यह है कि जब डी०लिट् मिल गई, पी-एच्०डी० मिल गई, ऑनरेरी डिग्रीज मिल गई तो लोग मुझे डॉक्टर कहना ही भूल गए। वह खाली बाबा आमटे ही कहते हैं। जब मैं बाबा आमटे नहीं था लोग मुझे डॉ० आमटे एम०डी० कहते थे। यहाँ तक कि मेरे सर्जन ने ऑपरेशन टेबुल पर लंदन में मुझे कहा -"डांट बीफुल अस, यू हैव बी फूल्ड द वर्ल्ड यू मस्ट हैव बिलोंग टू द मैडिकल प्रोफेशन।"

मैंने कहा -"नहीं भाई, मेडिकल कॉलेज का मुँह नहीं देखा।"

जब आनन्दवन में साइंस कालेज खोला तब माइक्रोस्कोप क्या है, पता नहीं था। पहली बार जिन्दगी में मैं जब कलकत्ता गया तब माइक्रोस्कोप मैंने देखा। उनको यकीन हुआ।

मेरी माँ बहुत बड़ी कलाकार थी, वह नेचर से, सृष्टि से और फूलों से बहुत मोहब्बत करती थी। पागलपन उसका, बगीचों के पीछे ही था, वह हमेशा कहती थीं।

एक बार एक बड़े श्रीमान ने दान के लिए मुझे बुलाया - जन्माष्टमी के दिन। मैं गया उनके गाँव, पता लगा कि 'वह पूजा कर रहे हैं। पूजा बहुत देर तक चलेगी। वह आज नहीं मिल सकेंगे।' मुझे बड़ा गुस्सा आया, टाइम दे के बुलाया था।

वह मेरा जन्म गाँव है - हिंगन घाट। जब मुझे बुलाने आये थे तो मैंने कहा कि - भले आदमी हिंगन घाट का मेरा जनम काल का रिश्ता है। मेरी नाड़ वहाँ काटी गई। मेरा जन्म आपके गाँव में हुआ है। और वहाँ जब गोरखा यह बोला कि आज नहीं मिल सकेंगे तो मैं बहुत-कुछ बोला। फिर उस चौकीदार ने मुझे पाँच रुपये निकाल के दिए। मुनीम जी जो बैठे हुए थे - सौ रुपये का नोट दिया। वहाँ जो चिट्ठी देने वाला दरबान था उसने एक रुपया दिया। उतने रुपये ले कर मैं वापिस आया और अपनी दैनन्दिनी में लिख दिया - "दान आदमी को दीन बनाता है, नादान बनाता है। **चैरिटी डिस्ट्रायज वर्क बिल्ड्स** अब दान माँगने नहीं जाऊँगा किसी के घर। अब दफ्तर में जो आयेगा, आनन्दवन में आयेगा, पेशेन्ट्स को वहाँ रखेंगे तो दान लेंगे, नहीं तो नहीं लेंगे। माँगने नहीं जायेंगे।

प्र०: यह तो आपका आदर्श वाक्य रहा है कि दान जो है वह नष्ट करता है। हमें साधन चाहिए, ज्ञान चाहिए।

उ०: जी हाँ, और काम से जीवन को उजाला मिलता है। **वर्क बिल्ड्स** जो सबसे ज्यादा (बड़ी) बात थी। फिर मैंने, मेरे भाइयों-बहनों से कहा कि ऐसा-ऐसा अपमान सहन करना पड़ता है। अब अपने काम में लग जायेंगे। और जो छुटपन की बात मुझे माँ ने कही थी - 'यह रंग कहाँ से लाया यह कलर बॉक्स से नहीं लाया, इन्द्रधनु से लाया।" तो मैं पेशेंट से कहता -दिखो अपने हाथों से अपने टोमेटो बनायेंगे तो वहाँ का रंग खींच के लायेंगे, टोमेटो यहाँ होने लगेंगे। लेडीज फिंगर - भिंडी लगाई तो हरा वहाँ से ले के आयेंगे। वह शलगम, लगाया. । यहाँ तक हुआ कि जब परदेस के मेहमान मेरे पास आये उन्होंने उपज देखी। वे बोले कि 'इस छोटे-से गाँव में आपके पेशन्ट्स ने, बीमारों ने, बहुत-सी सब्जी बहुत-सा अनाज पैदा कर लिया है।' मैंने कहा- 'दो रुपये में दस किलो बेच नहीं पाता हूँ। उस जमाने में सेर से बेचे जाते थे। पसेरी से बेचे जाते थे। मैंने कहा कि-कैसे बेचूँ? दूध के डब्बे-के-डब्बे भरे हुए थे। पर कोढ़ी के हाथों का दूध कोई लेता नहीं था। नगरपालिका रास्ते पर फेंक देती थी। उस वक्त मुझे इस देश की दरिद्रता का भान हुआ। मैं गाय का दूध पेशेन्ट्स को पिलाने लगा।

जीवन में इशारा, हरेक को होता है। निमित्त का दरवाजा खुल जाता है जीवन में उस वक्त यदि उस क्षण को पकड़ लिया तो जिंदगी में मजा आता है, मस्ती आती है। उन्माद आता है और फिर कितनी भी विपरीत परिस्थिति के बावजूद सवार हो जाओ, मार्ग छोड़ने की इच्छा नहीं होती। सात बार गिरो। आठ बार चढ़ो।

और इस विधायक कार्य में **विनोबा** जी ने मरने से आठ दिन पहले मुझे पूछा था कि -'वह उन्माद तुम्हारा अभी कम नहीं हुआ?' मैंने कहा -'नहीं।' फिर मैंने एक प्रसंग सुनाया - फतह सिंह राव जी का। इट हैज हैल्प्ड टू सीजन माई विल', इन प्रसंगों ने मेरे जीवन के विल पावर की धार बनाई ह्विच कैन कट द ग्रेनाइट सिचुएशन।

एक बार विनोबा जी ने कह दिया - 'देखो पत्थर जैसे बैठने में कोई तारीफ नहीं है। जीवन में खाली अविचल हो के नहीं चलेगा। वैसे जीवन में उन्माद निर्माण करने वाली परिस्थिति भी होती है। उस पर सवार भी हो सकता है आदमी। इसलिए मैंने मेरी कविता में बिनोवा जी के बारे में कहा न कि 'तुम्हारे कंधों पर बैठ के नया क्षितिज मुझे बुला रहा है.., 'विनोबा जी, आपके भूदान के बारे में मैंने जो कह दिया (तो) आपको लगा मैं बहुत भद्दा बोल गया। क्या आपका **धर्मचक्र** घूमा ही नहीं? आपने बहुत गंभीर हो के कहा -"इतनी द्रुतगति से घूम रहा है वह कि आपको स्थिर दीखता है।' लेकिन इतिहास ने "कौल" मेरे पक्ष में दिया - उनके मरने के बाद, कि वह घूमा ही नहीं था। किसी द्रुत गति के कारण स्थिर नहीं था। क्योंकि खाली **भू-दान** का **आंदोलन**, विचार का आंदोलन था। मैं चाहता था कि रामघनी गाँव में ऐसी शिक्षा हो, ऐसी ट्रेनिंग हो कि नई सेना बाहर निकले। शांति सेना, शांति-शांति की कहने से शांति नहीं होती। शांति का टैक्नीक होता है, शांति की एटीट्यूड होती है। यह सोचते-सोचते मुझे ऐसा लगा कि तपस्या **बिनोवा जी** ने की और वरदान मेरे **मार्क्ससिस्ट लेनिनिस्ट** फ्रैन्ड्स जो थे, उनको मिल गया।

मैंने यहाँ आ कर कहा कि -"बाबा, बिनोवा जी **भू-दान** का आंदोलन छेड़ रहे हैं। तपस्या उनकी हो रही है, वरदान हमें मिलेगा। लेकिन वह भी उनके बारे में मैंने बहुत कठोर हो कर कहा था। वह जानते, वह मानते थे कि जैसे चीजों का आयात हो सकता है वैसे क्रांति का भी आयात कर सकते हैं। वह नहीं हो सकता था" **माओ** ने उनको बताया था कि **स्टालिन** की क्रांति **चाइना** में नहीं हो सकती, **माओ** की क्रांति हिन्दुस्तान में नहीं हो सकती। लेकिन वह सोचते थे कि क्रांति का आयात हो सकता है।

प्र०: बाबा साहब आपके पिता जी ने तो पूरे तौर से आपको स्वीकार किया। माता-पिता के अतिरिक्त आपके परिवार जनों ने या आपके समाज वालों ने आपको कैसे स्वीकार किया?

उ०: शायद अभी भी स्वीकार नहीं करता होगा समाज। मैं मानता नहीं समाज। आप यह नाम-कीर्ति इसके बारे में कहते होंगे?

प्र०: नहीं.. आपके कार्य ...जो आपके प्रति था कि यह एक पगला है, उन्मादी है। ऐसा समाज आज तो आपको नहीं कहता?

उ०: जी नहीं।

प्र०: आज वे स्वीकार करते हैं?

उ०: वे स्वीकार करते हैं। वे मज़ाक में कहते हैं "ही इज मैथोडिकल इवुन हिज मैडनेस.." जब सेवा को समर्पित जीवन कर दिया जाता है समाज की बकवास बन्द होती है। हम तो खाली कहते ही नहीं गए थे एक ओर ऐसा होता है, वैसा होता है "आइ डिड नॉट वर्क्ड फॉर द पेशेंस, आइ वर्क्ड विद द पेशेंस"। फॉर और विद में खाली ग्रामर का या व्याकरण

का (ही) फर्क नहीं है। ज़मीन-आसमान का फर्क है। "इन कम्युनिज़्म ऑर्गेनाइजेशन विद द पीपुल फॉर द पीपुल' में अहंकार है। यह अज्ञान है, यह गरीब है, यह दरिद्र है। इगो है... जी हाँ और 'विद में समर्पण" की भावना है।

प्र०: मैं और तुम का (भाव) नहीं हम का है।

उ०: जी हाँ, शेयरिंग है। 'वी' है। आइ विल डू दिस फॉर यू। यू आर इग्नोरेंट आइ विल रन क्लासेज फॉर यू, यू आर पूअर, आइ विल गिव यू समथिंग।"

प्र०: बाबा, शादी हुए तो वर्षों हो गए। परिवार भी बढ़ गया। आपने बड़ी चुनौतियों के काम भी किए, कष्टकर काम किए, परिवार ने भी कष्ट पाया, आप जंगलों में शेरों की दहाड़ सुन के धरती पर, नदी की सूखी रेत पर सोये। इस सारे लंबे काल में ताई से संघर्ष हुआ? मतभेद हुआ कभी?

उ०: मेरे काम के बारे में.. कभी संघर्ष नहीं हुआ। उसका समर्पण इतना है। उसकी प्रीति ही आज भी मेरे कार्य की चिरस्फूर्ति है।

प्र०: ताई न होती तो बाबा आमटे आज वह न होते?

उ०: नहीं होते, बिल्कुल नहीं। नॉट एशेम्ड टु मेक दिस इटरनल कनफेशन बिफोर द सोसाइटी।"

इस उमर में जो चैलेंज है... चैलेंज आते ही वह खड़ी हो जाती है। यही नहीं दो साल पहले, नागराज कर के मेरे पास एक आदमी है इसकी बुद्धि की बाढ़ ही नहीं हुई है। उसके हाथ पर, "नागराज यह लो कह कर गोबर रखो तो खा जाता है। रस मलाई रखो खा जाता है। उसकी बहन मेरे पास आई तो मैंने कहा - 'वह माँ कौन है जिसने छत्तीस साल तक इस बच्चे को अपनी गोद में रखा?' उस माँ, उस साध्वी का मैं दर्शन करना चाहता था। वह बोली - "बाबा - हमारी माँ गुजर गई और इसे भी हम आपके पास लाये हैं। इस बच्चे का कौन संभाल करेगा, बंबई में कौन रखेगा?'

साउथ इंडियन फैमिली का, नागराज भस्म लगाये हुए उसके पिता जी और यह लड़की, मुझसे कहती है कि - इसका संभाल कौन करेगा ? हम बहुत जगह ले गए, यहाँ तक कि **मदर टेरेसा** के पास ले गए। अपंग है, लार टपकती है, बुद्धि बिलकुल नहीं है, बैठ नहीं सकता और उसको रखा, **होमियोपैथी अस्पताल** में - नागपुर में रखा और बोला हमसे नहीं होता टट्टी-वट्टी साफ करना।" मैंने लाचारी में कह दिया - मैं क्या करूँ?

मैं बहुत बेचैन! जैसे मेरे जीवन में तुलसीराम आके खड़ा हुआ था। मुझे देखा नहीं जाता उसकी माँ के चले जाने के बाद। इनका कसूर नहीं है।" वह लड़की रोने लगी कि मैं एम०ए० फर्स्ट क्लास हुई। मेरा भाई जो बहुत ब्रिलिएंट है, आई०ए०एस उसने भी शादी नहीं की। मैंने चिल्ला के कह दिया इससे उसका क्या होने वाला है, तुमने जो शादी नहीं की?" उसके पिता जी रो

बैठे कि -"दो पैर के पशु को मैंने जन्म दिया, बच्चे को नहीं जन्म दिया है। मैं नि:संतान हो रहा हूँ। मेरा घर निर्वंश हो रहा है। मेरा लड़का भी शादी नहीं करता, मेरी लड़की भी शादी नहीं करती.. ।"

इस दु:ख को - इस बीमारी को मैंने देखा, बहुत लाचारी से उस बच्चे को कहा -"तू एम०ए० हो चुकी है? मैं तुझे क्या कहूँ? मैं यदि वह बाबा आमटे होता तो इस बच्चे को मैं अपनी गोद में लेता और इसकी सेवा करता।"

तभी ताई आई पूजा करके और वह इसे रखने को तैयार हो गई। बोली -"इसका संभाल मैं करूँगी।" इसीलिए मैंने लिखकर रखा है इसकी चिर प्रीति ही मेरी चिरस्फूर्ति रहेगी और है।

नागराज के पिता जी आए - मेरी पत्नी ने भी ऐसा नहीं रखा इसे, जैसा नागराज को आपने रखा है - कहते हैं।

उसने मुझे कहा था - "देखो छोटे-छोटे बच्चे हैं, कोढ़ियों का काम आप कर रहे हैं। आप बस्ती में (जो) किराये का मकान ले रहे हैं, मैं वहाँ नहीं रहूँगी। मैं **आप** के साथ रहूँगी। फिर बच्चों को कोढ़ हुआ, तो उनकी भी सेवा करूँगी।'

भगवान के मन में हुआ तो बच्चों को होगा। सोसाइटी वाले कहते थे - बच्चों को शायद हो जायेगा। तो भी जीवन के ऊपर ताई की निष्ठा विचलित नहीं हुई।

प्र०: यह तो बाबा शिव और भवानी का मेल है। शिव बड़े हैं कि भवानी बड़ी हैं, यह कौन जानता है? अब थोड़ा-सा परिवार के संदर्भ से हट के। देश गुलाम था। हम जैसे कुछ थे जो पढ़ाई वगैरह में रह गए, आप राजनीति में जेल भी गए, आपने क्रांतिकारियों के साथ भी संपर्क रखा, उनको मान दिया। क्रांतिकारियों से जो आपके संबंध रहे, क्या कभी **चन्द्रशेखर आजाद** से, **राजगुरु...**

उ०: राजगुरु मेरे घर में आये। बहुत बड़ा घर था हमारा। जमीन, जागीर, जायदाद कई बार इतिहास में जब्त हो चुकी थी। मेरे पिताजी ने इसको मान लिया था। इसीलिए वह वकालत करने मुझे कहते थे कि 'गुलाम मत बनो! अब नौकरी नहीं करनी है।' मेरे घर में किसी ने उसके बाद सरकारी नौकरी नहीं की आज तक।

प्र०: और प्रसंग में आपको फिर से याद दिलाना चाहूँगा। आपने **अभय साधक,** गाँधी जी की उपाधि की चर्चा की और फिर आपने यह भी कहा कि जिसको **अभय साधक** कहा था वह कायरों का कायर बन रहा था... ।

उ०: कायरों का कायर था।

प्र०: यह.जो अभय साधक वाला प्रसंग आपका है, उसके पीछे भी कोई प्रेरणा थी, कोई व्यक्ति था? नारायण नाम का... कोई पहले?

उ०: जी हाँ वह पहलवान था।

वह सबकांसस माइंड में, मैं क्या हूँ . .. एक ब्राह्मण कुटुम्ब का, वह भी इजारेदार का, सरकारी नौकर का घरद्वार बंगला, मकान में रहने वाले का लड़का.. । मैं कुश्ती खेलने जाता था **महमूदा पहलवान** के अखाड़े में। तो पहली बगावत वहीं हुई। कुश्ती खेलना और मुसलमान से? गुरु मुसलमान, थे वहाँ। नारायण पहलवान भी आता था। बहुत खूबसूरत दीखता था। उसको सब. मेरे घर में, नागपुर भर में - गुंडा कहते थे। उसको रंडीबाज कहते थे। लेकिन अखाड़े में वह शेर बब्बर जैसी नहीं, चीते जैसी कुश्ती खेलता था।

प्र०: तेज फुर्तीली..

उ०: बहुत तेज। हमेशा नीचे जाता था, टाँग मार के ऊपर आता था। तो हम जवान लड़कों का वह आदर्श था। उस वक्त तक हम समझते भी नहीं थे - रंडीबाजी क्या है। कुछ समझते भी नहीं थे। ऐसे ही अखाड़े से लंगोट बाँध कर हम निकले थे। पाँच-छह जन निकले.. नागपुर नगरपालिका के जनरल पोस्ट ऑफिस में लोग टिकट, कार्ड, पोस्टकार्ड खरीद रहे थे। उस बरांडे में उस्ताद तहमद पहन कर लंगोट बांधे हुआ खड़ा था। हम लोग वहाँ उनके साथ ही थे। सामने से आर०एस०एस० का शिविर। नया संघ शुरू हुआ। वह भी लकड़ी-वकड़ी लेकर खाकी पैंट काली टोपी पहन कर, बहुत सारे लड़के भी साइकिल से आ रहे थे। एक बुश के बाजू में, पेड़ के बाजू में, झाड़ के बाजू में एक लड़की चिल्ला रही है, - 'दौड़ो-दौड़ो -' एक लड़की की आवाज आई। यह **नारायण** बेचैन हुआ। उसने देखा कि वहाँ नंगी तलवार लेकर एक आदमी खड़ा है।

-'खामोश साले, मेरी बहन से कौन मजाक कर रहा है? जान से बाजी लगानी पड़ेगी भैया।' जैसे वह नजदीक गया। हम बच्चे थे देख रहे थे। जैसे सर पर नारियल रखकर लकड़ी से हम फोड़ते थे अखाड़े में, वैसे ही हमारे सामने **नारायण** की गर्दन धड़ से अलग गिर गई लॉन के ऊपर। लेकिन वह ज़रा भी हिचकिचाया नहीं था। मृत्यु का ऐसा आलिंगन! मेरे सामने तो भगवान **कृष्ण** द्वारा **द्रौपदी** का वस्त्र पूरा करने वाला उदाहरण भी बहुत छोटा दिखाई दिया।

उन दिनों तो छोटी उमर में भी मुझे लगा था कि इन्होंने वस्त्र दिया है - धर्मराज बैठे थे। लेकिन **नारायण** की जिन्दगी का जो प्रश्न उठा उसे मैंने आँखों से देखा था - "फॉर हिज एनोनिमस सिस्टर"- वह कहते हैं कि मेरी बहन से कौन छेड़खानी कर रहा है? और इस आदमी को लोग गुंडा, बदमाश, रंडीबाज कहते थे?

वह हमेशा हमें कहता था -"अरे साले रंडी को खुश करता हूँ। रंडीबाज काहे का हूँ मैं? सब आशिक होके मेरे पर फिदा हैं। मैं जाता हूँ स्वेच्छा से उसके घर। इच्छा के खिलाफ किसी पर बलात्कार

नहीं करता हूँ। यह **नारायण** सुदर्शन चक्रधारी भगवान से भी बड़ा उज्जवल रूप लेकर मेरे जीवन में आया... । ये कितने साल गुजर गए।

वार के दिन थे। बरोडा स्टेशन से ब्रिटिश टॉमीज को फ्रण्ट पर ले जा रहे थे। ग्रैण्ड ट्रंक में बिठा कर जा रहे थे। तब बरोडा स्टेशन वाटरिंग स्टेशन था। दस मिनट तक ग्रैण्ड ट्रंक यहाँ रुकती थी। ग्रैण्ड ट्रंक और उसमें बहुत सुन्दर खूबसूरत नई शादी की हुई लड़की और एक लड़का सवार थे। सो मैंने देखा अरे यह कंपार्टमेंट मिलिट्री का है, लेकिन ये दो सिविल लोग बैठे हुए हैं। मैं गया तो सोल्जर बोले, "नहीं है, रिजर्व है आर्मी के लिए. डोन्ट।" तो मैंने अंग्रेजी में कहा कि "लुक हियर. मेरी आँखों के सामने यू हैव एडमिटेड दिस लेडी एण्ड दैट ब्वाय, दे आर सिटिंग, दे अकुपाई दि बर्थ, प्लीज एलाउ। आइ एम गोइंग टू वर्धा। वर्धा में उतरना है।"

-'आपको कदम नहीं रखने देंगे।' मुझे गुस्सा आया। मेरी बहुत बड़ी जटाएँ थीं, दाढ़ी थी। मैं घुस पड़ा। दरवाजे को खोल दिया और चला गया अन्दर। गाड़ी खुल गई। वाटरिंग स्टेशन था। पानी भर दिया, इंजन शुरू हो गया। सब ब्रिटिश टॉमीज थे, सोल्जर थे, शस्त्रधारी थे। आये उस लड़की के पास। जानबूझकर उन्होंने उसको प्रवेश दिया था। मजाक करने लगा कोई। पति जिसकी नई शादी हुई थी वह लैट्रिन में चला गया और दरवाजा बोल्ट कर दिया। (अब) उसको छोड़कर वह ऐसे चिल्ला रही थी – अरे. जैसे ही एक टॉमी ने उसके वक्षस्थल पर हाथ रखा, मैं चिल्ला उठा। मेरे में वह **नारायण** गरज उठा –"यू डेयर नॉट टच माई सिस्टर.. याद रखो वह मेरी बहन है।"

वह अंग्रेजी में कहने लगे -"साले तू अभी आया, वह पहले बैठी थी। तेरी बहन कहाँ की है?"

"खामोश।" मैंने कहा -"जब तक साँस है, मेरी नाक में दम है तब तक मैं हाथ नहीं डालने दूँगा।" और -"टिल आइ फेल डाउन.. वे मारते गए, मेरे बाल खींचते गए। वर्धा में गाड़ी को रोका गया और कंपार्टमेंट को बाजू में किया गया।

पुलिस के सर्कल इंस्पैक्टर थे। उन्होंने मुझे पहचान लिया कि **आमटे वकील** है खून में पड़ा हुआ है यह। उन्होंने कहा कि -" नहीं, मैं डिटेन करूँगा। एस०पी० ने बोल दिया था अंग्रेज था –"नो, फ्रण्ट पर जाने वाले को डिटेन नहीं कर सकते।" उसने कहा नहीं - "लॉ एण्ड ऑर्डर" का स्टेशन इंजार्च.. मैं हूँ। सब इंस्पैक्टर जी ने. **सोहन लाल जी नाहर**, मुझे याद आया उनका नाम, इनको डिटेन कर दिया। मुझे अस्पताल भेजा गया। यकीन रखिये ब्रिटिशों के वक्त उस जमाने में कोर्ट मार्शल के लिए उनके लिए हुक्म निकला। इंग्लैण्ड में वहाँ की बहनों ने वृत्तांत पढ़कर मुझे कांग्रेचुलेशन दिए। मेरा अभिनंदन किया। लेकिन इस देश में न किसी ने दखल दिया, न कुछ किसी ने सहानुभूति दी। वन फाइन मॉरनिंग मेरे पास आया कि इनका **कोर्टमार्शल** बंगलौर में होगा। मैंने खुद सोचा कि बंगलौर में कोर्ट मार्शल होगा और मुझे आर्मी के लोगों ने कह दिया था कि –"आपको मार डालेंगे वहाँ केंटोनमेंट में। आपको प्रोटेक्शन लेना चाहिए।" **सोहन लाल**

जी नाहर को तो संस्पेंड किया गया था। तो मैंने कहा - "देखिए आइ डोन्ट नीड एनी बॉडीज प्रोटेक्शन। जिसने मुझे उस दिन गाड़ी के डिब्बे में बचाया था, वह ही बचायेगा। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

इसका असर इतना हुआ कि उनको जो कुछ होना था हुआ। उनकी एपोलॉजी का लैटर आया। तो आपने जो कहा बहुत सही तौर पर कहा.. यह **नारायण** का प्रसंग यदि मैंने नहीं देखा होता, तो शायद मैं **अभय साधक** न बनता।

बाबा आमटे ! बयालीस ईस्वी के बाद मुझे (लोगों ने) बाबा आमटे कहना शुरू किया था। तब मैं आदिवासियों के बीच में काम करता था.... ।" □
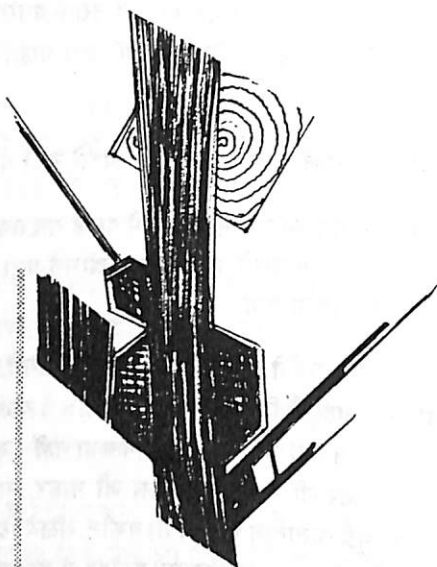
॥ गाँधी चिन्तन की साहित्यिक सृष्टि : विष्णु प्रभाकर ॥

हिन्दी के श्रेष्ठतम गद्य रचनाकारों में सादर स्वीकृत एक नाम है - श्री विष्णु प्रभाकर का। साहित्य की अनेक विधाओं में अपने उत्कृष्ट अवदानों के लिए आप सदैव उल्लेखनीय हैं।

अनेक कालजयी श्रेष्ठ पुस्तकों के रचनाकार विष्णु जी मानव-जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभवों के मर्मस्पर्शी प्रभाव रचने वाले लेखक हैं। इनके साहित्य में समय ने अपनी समग्र अभिव्यक्ति पाई है।

हिन्दीतर पाठक समाज में भी आप व्यापक रूप से लोकप्रिय तथा सम्मानित हैं। विष्णु जी की इस रेडियो-जीवनी के ये कुछ संक्षिप्त अंश आपको मर्मस्पर्शी स्तर पर युग का दर्शन करा सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

इस भेंटवार्ता की रिकॉर्डिंग में भेंटकर्ता हैं - अपनी अनेक श्रेष्ठ औपन्यासिक कृतियों से हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध करने वाले हिन्दी के वरेण्य लेखक -श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा "भिक्खु" आकाशवाणी के पूर्व महानिदेशक।

यह रिकॉर्डिंग दिल्ली में 13-14 जून 1989 के बीच सम्पन्न की गई।

प्र०: विष्णु जी, मैं सोचता हूँ कि बचपन से अच्छी शुरूआत क्या हो सकती है? जिज्ञासा है कि आप शांत बालक थे या चपल? आपकी बाल-लीलाओं से आपके व्यक्तित्व का या विगत में जो भविष्य का बीज रोपित हो चुका था उसका, बहुत कुछ पता चल सके।

उ०: शर्मा जी, यह जो सीधा-सा प्रश्न आपका है कि मैं शान्त था या चंचल, इसका मैं हाँ या न में उत्तर नहीं दे सकता। मुझे पूरी पृष्ठभूमि आपको बतानी पड़ेगी। और वह बहुत महत्वपूर्ण इसलिए है कि मेरे प्रारम्भिक जीवन का, मेरे भविष्य पर बहुत गहरा असर पड़ा। यानी उसी समय - जो कुछ मैं आज हूँ, उसकी नींव उसी समय पड़ गई थी।

मैं एक संयुक्त परिवार में रहा और संयुक्त परिवार भी केवल मेरे पिता या मेरे चाचा का नहीं, बल्कि मैंने बाबाओं का संयुक्त परिवार भी देखा है। और अपने गाँव में या कहिए छोटे कस्बों में जिसमें मैं रहा हूँ, आज वह मकान तो नहीं है, जमीन है। बड़ा विशाल भवन था और उसमें हमारे कई बाबाओं के परिवार रहते थे। तो शुरू से ही मुझको एक इतना व्यापक परिवेश मिला अपने ही परिवार में कि, मुझे बाहर कहीं भटकना नहीं पड़ा।

प्र०: अच्छा !

उ०: हाँ। मेरी परदादी जो थीं, शायद वह नब्बे पार कर चुकी थीं, लेकिन हमको पास बिठाकर के और चादर के अन्दर छिपाकर के हमको घी और रोटी जो खिलाती थीं उसके साथ-साथ कहानियाँ सुनाती थीं। शर्माजी जो कहानी मैंने उनसे सुनी थी, आज तक उसने मुझे परेशान किया।

प्र०: कैसे?

उ०: वह कहानी सुनाती थीं, बहुत सारी कहानी सुनाई। वह तो मैं क्या बताऊँ? लेकिन एक कहानी थी कि - राजा का लड़का या व्यापारी का लड़का, जब वह विदेश जाने के लिए चलता था तो उसकी माँ कहती या पिता, जो भी पात्र होते वह कहते कि पूरब जाना, पश्चिम जाना, उत्तर जाना, दक्षिण मत जाना।

प्र०: दक्षिण क्यों नहीं?

उ०: और वह राजकुमार, जो भी था वह दक्षिण ही जाता था। अच्छा, आपने पूछा था दक्षिण क्यों नहीं, इसका भी एक रहस्य है। क्योंकि आप जानते हैं **दक्षिण** हमारे यहाँ **यमराज** की दिशा है। इसलिए वह हमेशा संकट की दिशा है। मृत्यु का सामना-साक्षात्कार करना पड़ता है। तो इसलिए वह कहते थे उधर मत जाना। और राजकुमार हमेशा उधर ही जाता था। क्योंकि साक्षात्कार करने में ही सफलता मिलती थी।

इस कहानी में मैं नहीं समझता कि वह 1918 का साल था या क्या था, मैं शायद 6 बरस का रहा होऊँगा 1918 का साल होगा और आज 1989 है। तब से लेकर आज तक यह कहानी मुझे अंग्रेजी में जिसे कहते हैं "हौंट" करती रही है। और बहुत कुछ मैंने इससे सीखा है। आज भी मेरे में घूमन्तूपन जो है कि मैं बैठ नहीं सकता, निकल पड़ता हूँ अपने देश में कहीं भी और उसका यह बीज वहीं पर है कि दक्षिण मत जाना, और मुझे यात्रा करते हुए डर लगता है। लेकिन मैं यात्रा पर जाता हूँ।

प्र०: और इस प्रकार हिमालय का तो आकर्षण रहा ही है।

उ०: हाँ, हिमालय देखा। समुद्र से मुझे बड़ा लगाव है। तो यह एक चीज जो है आज तक रही है बचपन की। और भी जो चीजें थीं संयुक्त परिवार में रहने के कारण, जिसको कहते हैं कि सहनशक्ति, दूसरे की दृष्टि को समझ लेना यह स्वभावतया हमारे लिए वहाँ संभव हो गई। बचपन से जो हमारा लालन-पालन हुआ और बहुत सारे बच्चे परिवार के खेलने-कूदने में भी रहे। व्यक्तिगत रूप से मेरे साथ एक बात थी कि मेरे परिवार में मेरे पिता सबसे कम कमाने वाले व्यक्ति थे। जब सब लोग अलग-अलग हो गए, संयुक्त परिवार में भी रहा हूँ लेकिन जब बँटे तो सबसे कम आय वाले, मेरे पिता थे। और मेरी माँ, परिवार में सबसे अधिक कहना चाहिए सम्माननीय भी थीं और उनका बड़ा, एक तरह से प्यार भी था। तो यह जो विरोधाभास था, विरोध था कि आय कम है और, क्योंकि मेरी माँ कई कारणों से, एक तो यह कि वह बहुत सुन्दर थीं, दूसरी यह कि वह पहली पढ़ी-लिखी महिला थीं, उस परिवार में आई थीं, उस जमाने में.. ।

प्र०: मतलब कितने वर्ष पूर्व आज से.. ?

उ०: पिछली सदी की बात कहना चाहिए। तो वह पढ़ी-लिखी थीं मेरठ में रहीं और वहाँ **आर्यसमाज** का बहुत प्रभाव हुआ तो परिवार में उनको पढ़ाया गया। स्कूल तो नहीं भेजा गया। तो अपने साथ जो सामान लाई थीं उसमें एक बक्सा किताबों से भरा हुआ था।

प्र०: समय को देखते हुए बड़ी असाधारण बात थी।

उ०: असाधारण बात थी। तो इसलिए कि वह पहली महिला थीं जिन्होंने अपने ससुर से बात की थी।

प्र०: वाह।

उ०: **पर्दे** को यहाँ तक ले गई थीं। इस कारण उनका बड़ा सम्मान था और आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो–तुलनात्मक दृष्टि से, सबसे कम थीं।

परिवार में बहुत स्नेह था हमारे। लड़ाई भी होती थी वह तो कहते हैं न जहाँ चार बरतन होंगे खड़केंगे, मुझे तो यह लगता है कि लड़ना चाहिए। वह बहुत जरूरी है। उसके बिना प्यार बढ़ता नहीं है। गहराई नहीं आती है। वह लड़ाई ऐसी ही होती। तो मेरे साथ विशेष बात यह थी कि मेरे बड़े भाई तो बहुत पहले मामा के यहाँ

चले गए थे ... मेरी माँ पढ़ी-लिखी थीं तो उनका दृष्टिकोण यह था कि मेरे बच्चे पढ़े-लिखें, गाँव से बाहर जाएँ।

तो मैं जब कहता हूँ न कि मेरे दो गुरु हैं - मेरी **माँ** और मेरी **पत्नी**, माँ को मैं इसलिए गुरु मानता हूँ कि उन्होंने बहुत जल्दी हमको अपने से अलग कर के पंजाब भेज दिया था कि हम पढ़ सकें, कुछ कर सकें यहीं गाँव में न हम डंडी मार, तोलते रहें या तम्बाकू बेचते रहें। मेरे पिताजी की तम्बाकू की दूकान थी। लेकिन आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने से उनकी जो, एक कहना चाहिए घुटन अन्दर थी। हालाँकि बाहर नहीं प्रकट करते थे।अन्दर वह घुटन होती थी।अच्छा, उसी समय जो एक घटना घटी। मेरे जो एक छोटे चांचा थे परिवार में सबसे पढ़े-लिखे और परिवार को चलाने वाले वह ही थे, तो उनके बच्चा नहीं था कोई। मेरे छोटा भाई जो था वह उन्हीं को चला गया था। और बड़े भाई जैसे मैंने कहा वह पंजाब चले गए थे पढ़ने के लिए। तो अब हम परिवार में बराबर के दो रह गए थे छोटे थे। जब हम दो रह गए, दोनों में ऊपर से तो ठीक-ठाक था...।

प्र०: मगर क्षमा करें। यह तो बताया नहीं आपका जन्म स्थान?

उ०: जन्मस्थान मेरा **उत्तर प्रदेश** जिला **मुजफ्फरनगर** में एक कस्बा है छोटा-सा गाँव कहना चाहिए - **मीरापुर,** गंगा के किनारे है।

प्र०: तो लाहौर क्यों जाते थे, पढ़ने के लिए?

उ०: मेरे मामा जो वह पंजाब में रहते थे तो मेरी माँ ने अपने भाई के पास हमको भेज दिया था। उस समय यह हिसार भी पंजाब में ही था।लाहौर भी पंजाब में ही था वह बड़ा पंजाब था। तो हम दो भाई जो रहे, ऊपर-नीचे के होने से आप जानते हैं कि ऊपर-नीचे के भाई-बहन लड़ाई बहुत करते हैं..।

प्र०: मित्र भी बहुत होते हैं।

उ०: हाँ मित्र भी होते हैं। लड़ाई भी बहुत करते हैं। उसमें एक अन्तर पड़ गया कि मैं अब अपने चार भाइयों में एक था और वह अकेला भाई था। तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसकी स्थिति हमसे ऊँची हो गई थी और यह 'ऊँचा होना' का असर, मेरे अन्तर्मन पर पड़ता था। बच्चा होता है न, वह तो महसूस बहुत करता है। तो वह महसूस करने का परिणाम यह हुआ कि मैं अन्तर्मुखी हो गया आज तक मैं अन्तर्मुखी हूँ।

उन कारणों से तो उस अन्तर्मुखी होने से अच्छी बात भी हुई, और बुरी बात भी होती थी मतलब जैसे मैंने चोरी की और अच्छी बात यह थी कि हर चीज पर मेरी दृष्टि प्रश्न करती थी। वैष्णव परिवार था। छूतछात का जमाना था। हमारा गाँव मुसलमानों के गाँव के बीच में था।

प्र०: शायद सैयदों का?

उ०: सैयदों का गाँव था, जो इतिहास में किंग मेकर हुए हैं। **सैयद हसन हुसैन** वह वहीं के थे। और हमारे पुर का राजा **रतन चन्द** उनके साथी। तो इसलिए हमारा बादशाही परिवार से संबंध रहा। तो यह था। तो तब छूतछात बहुत ज्यादा होने से.. । मेरे पिता परम वैष्णव थे। मुसलमान के हाथ का कुछ खा लेना, साथ बैठ जाना भी पाप माना जाता था। हम लोग रिश्तेदारों की तरह बात करते थे। हमारे यहाँ की जमादारिन जो आती थी उसको हम चाची कहते थे और हमारी माँ पान बहुत खाती थीं, तो उसको पान देती थीं। तो मैं उसको ले जाता था पान देने या मैं उसको छू देता था। माँ मना करती थी, वह खुद मना करती थी, वह कहती -"बेटा क्या कर रहे हो? दूर रहो, दूर रहो, दूर रहो।" और जैसे वह मुझे दूर रहने को कहती थी, मैं चिपट जाता था।

प्र०: अच्छा **आर्यसमाज** के प्रभाव के बावजूद माँ.. ?

उ०: आर्यसमाज का प्रभाव तो बहुत बाद में मेरे पर आया। माँ पर था, माँ बेचारी आखिर नारी थी। उस वैष्णव परिवार में उनकी क्या चलती? तो मैं.. छूता था यह काम करता था। उसके बाद मेरी पिटाई होती थी। और एक और काम होता था कि नहाना पड़ता था।

प्र०: कपड़ों के सहित?

उ०: हाँ,फिर मेरी माँ को कुछ दया आई तो उन्होंने एक रास्ता निकाला जो शायद पहले से था। क्योंकि हिन्दू शास्त्र कामधेनु हैं। तो क्या करती थीं सोने की डाल के मूर्त्ति पानी में, उससे छींटे देती थीं। लेकिन मैं मानता नहीं था। अच्छा मैं आपको बताऊँ इसका क्या परिणाम हुआ कि मैं एक दिन गायों को जंगल में छोड़कर के आ रहा था। बड़ी प्यास लगी. गाँव के किनारे पर मस्जिद थी। मस्जिद में पानी भरा हुआ था, स्फटिक जल भरा हुआ था उसमें वह तालाब-सा था। मैं उसमें उतरा और मैंने पानी पी लिया। प्यास लगी हुई थी बड़ी तेज। पी तो लिया, उसके बाद सोचने लगा यह तो मुसलमानों का पानी पी लिया। अब कोई जिन मुझको मारेगा। यह बच्चे की कल्पना है। क्योंकि सब यही बताते थे डाँट पड़ती थी उस जमाने में। कोई न कोई बात तो होगी। तो फिर मैं वहाँ से भागा। लेकिन किसी जिन ने मुझे नहीं पकड़ा।

घर आया बड़े आराम से। मैंने किसी से नहीं बताया और मेरे मन में पहली बार यह शंका उत्पन्न हुई कि यह सब व्यर्थ की बातें हैं। दूसरी बार शंका पैदा होने का कारण था, वह और फिजूल था। मैं प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था। हम तीन मित्र थे। तीनों बड़े होशियार थे। जो प्रथम, द्वितीय, तृतीय आए। तीसरी कक्षा में जब मैं था तो मुझे यह था कि इस बार मैं प्रथम आऊँगा। मेरे एक मित्र थे उनके पिताजी ज्योतिषी थे। उनके घर हम खेलने जाया करते थे। तो उनके पिताजी ने मुझसे कहा-"बेटा तुम्हारा हाथ दिखाओ। हम तुम्हें बताते हैं।" तो उन्होंने मेरा हाथ देखा, कहा कि - "बेटा इस बार तो तुम पास ही नहीं होओगे, फेल हो जाओगे।" कहाँ

तो हम सोच रहे थे कि हम प्रथम आएँगे, कहाँ यह फेल होने की बात करते हैं। और अविश्वास इसलिए नहीं होता था कि प्रसिद्ध ज्योतिषी थे वह। और हम बच्चे ही थे छोटे। तो मैंने कहा कि -"चाचाजी यह कैसे होगा?" बोले कि -"एक पैसे की जलेबी रोज ले जाकर देवी पर चढ़ाया करो।"

ठीक है। हम बिना किसी को बताए पैसा हमको मिला या कहीं से उठाया खरीदी, चढ़ा दी। हमने देखा कि वह पुजारी का लड़का जो था वह उसको उठा के खा जाता। तो हम भी बच्चे थे, मन ललचाया, मैंने कहा -"हम नहीं खा सकते क्या?" तो एक दिन जब वह पुजारी का लड़का वहाँ नहीं था तो चुपके से वहाँ देवी को प्रणाम किया, हाथ जोड़े और उसके बाद थोड़ी दूर चले, लौट के देखा कि कोई नहीं है तो हमने जलेबी वहाँ से उठाई, और थोड़ी दूर चले कि कोई देवी आ तो नहीं रही? देवी नहीं आ रही थी। थोड़ी दूर चल कर पेड़ के नीचे गए, खा ली हमने। हमें बड़ा डर लगता रहा। घर पहुँचे। रात को नींद भी नहीं आई।

तो इन सब चीजों का जो प्रभाव पड़ा और फिर हमारे जमाने में तो यह राष्ट्रीय आन्दोलन शुरू हो गया था। 1919 का जलियांवाला बाग की याद है मुझको। गाँव में पहुँचा था, गाँव में कांग्रेस कमेटियाँ बनीं और मेरे चाचाजी मुझे हमेशा साथ ले जाते थे जलसे में। और उस जलसे का मैं आपको बताऊँ आपके सामने जो मैं आज बैठा हुआ हूँ खद्दर पहने हुए, यह वहीं से शुरू हुआ था। यह 1919 की बात है। कांग्रेस का जलसा हो रहा है। कांग्रेस के सदर थे एक पंडितजी। पंडितजी का एक छोटा-सा बेटा था पाँच साल का। तो पंडितजी ने अपने बेटे को मंच पर खड़ा किया और कहा कि - "बेटा भाषण दो।" तो भाषण दिया होगा पाँच साल का बच्चा, मुझसे दो साल छोटा क्योंकि भाषण उसको रटा दिया था। वह खड़ा हुआ और उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा कि -"मैं आपका बच्चा हूँ। मैं खद्दर पहनता हूँ, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ आप भी खद्दर पहनें।"

मेरे चाचा मेरे पास बैठे हुए थे तो वह अपनी भाषा में बोले - "देख एक वह लौंडा है एक तू है।"

अब यह बात हमको चुभ गई। इतनी चुभी कि.. जो मंगल की पैठ हुई अगले दिन ही, बाजार लगता है न, आप जानते हैं तो उसमें देखा कि एक दूकान पर खद्दर की धोती रखी है। उस जमाने में बड़ा मोटा खद्दर..

प्र०: गाढ़ा कहते थे।

उ०: गाढ़ा कहते थे उस जमाने में। वह मैंने अपने पिता से कहा कि -"मैं यह लूँगा।" पिता को समझ में नहीं आया कि क्या कह रहा है। वह उठ के आए मेरे पास -"क्या लेगा?" मैंने कहा - "यह लूँगा।" उन्होंने देखा - मोटी तार की खद्दर की धोती। बोले-"साला।" और एक तमाचा मार दिया। और हमारे चाचा की दूकान पास ही थी - कपड़े की दूकान थी। उन्होंने देख लिया। भगे-भगे आए। बहुत प्यार करते थे हमें। कहने लगे -"क्या बात है?' -"साला यह टाट पहनना चाहता है।" अब उसको याद आ गई कल की बात। अपनी बात याद आ

गई।-"नहीं, यह पहनेगा।" और उन्होंने हमको खरीद दी। उस दिन से आज तक तन से जुड़ा हुआ है। बीच में ऐसी घटनाएँ तो हुई कि मुझे नहीं मिला लेकिन जब मैं स्वतंत्र हो गया उसके बाद पहना है। तो जीवन की ये घटनाएँ..

जब मैं पंजाब में था पंजाब में **आर्य समाज सभा** में मैं काम करता रहा। मामा जी पक्के आर्यसमाजी थे। और आर्य समाज स्कूल में मैं पढ़ा तो जब मैंने वहाँ ये बातें सुनीं छूतछात के विरोध में, मूर्तिपूजा के विरोध में तो वह जो शंकाएँ मेरे मन में थीं या जिनसे मैं परेशान था, तो मैं पक्का **आर्यसमाजी** बन गया। यह दूसरी बात है कि एक समय आया, वहां से भी मेरा मोहभंग हुआ और मैंने देखा कि अंधविश्वासों को उन्होंने दूर किया वे अंधविश्वास फिर कायम कर दिये।

प्र०: लेकिन बचपन के जो प्रश्न थे उनके उत्तर आपको मिले?

उ०: मिले। आर्यसमाज की सभा में मैं जाने लगा और मैंने भाषण भी दिया। भाषण देना भी मैंने वहाँ सीखा और डिबेट में भाग लेना, नाटक में भाग लेना.. । संस्कृत का नाटक भी मैंने किया। हिन्दी नाटक में भाग लिया।

प्र०: नाटक का नाम स्मरण है?

उ०: जो किया पहला नाटक - एक राजा के बारे में था। राजा के दरबार में जाता हूँ। कहता हूँ -"भो राजन्।" राजा को प्रणाम करता हूँ। उसके बाद फिर जब थोड़ा बड़ा भी हो गया दसवीं पास कर ली तो अपना मंच खोला मैंने और मैंने बड़े नाटक किये। **श्रवण कुमार** में मैंने दशरथ का रोल किया था। **धर्माधर्म** में मैंने **कृष्ण** का रोल किया जो राष्ट्रीय आन्दोलन का नाटक था। या **कृष्ण अवतार** में मैंने **राजा उग्रसेन** का पार्ट किया। ये बाद की बात है। मगर बचपन के ये सारे प्रभाव जो पड़े हैं मौलवी का, पंडित का। सरकारी स्कूल का। और ये शंकाएँ पैदा होना - और एक परम वैष्णव पिता का पुत्र होने का, और प्रतिक्रिया रूप में उनसे पीछे हटना.. । जहाँ किसी को बहुत जोर से दबाया जाए तो वह फिर उभर कर आ जाती है। यह विद्रोह की जो खुद्दारी पैदा हुई, उसको **आर्यसमाज** ने सहायता दी।

प्र०: एक बात बताइए। आप एक छोटी-सी बस्ती से एक शहर में चले गए और ऐसी आयु में जब कि आपके प्रश्नों का समाधान नहीं हुआ था तो जीवन शैली का अन्तर जो आपको मिला होगा, उस समाज की जो प्रतिक्रियाएँ थीं उनके जो अन्तर दिखाई पड़े होंगे, क्या आप इन अन्तरों को लेकर भी आन्दोलित हुए हैं?

उ०: जी हाँ। यूँ तो बहुत, ऐसी बात तो हो नहीं सकती कि आप कहीं जाएँ और उसमें अंतर न हों। अन्तर बहुत हैं भाषा का अन्तर था, खानपान का अन्तर था और रहन-सहन का अंतर था। इस तरह की बहुत-सी घटनाएँ मेरे साथ हुई जिनका समझ में नहीं आता था कि भाषा की दृष्टि से क्या अर्थ होता था।

एक मजेदार किस्सा बताऊँ। मेरे पड़ोस में एक परिवार रहता था और वृद्धा थी वह बड़ा प्यार करती थी। वह कहने लगी कि -"बेटा रबड़ी खाएगा।" अब मैं तो रबड़ी जानता था, गाँव से गया था वहाँ तो रबड़ी बहुत प्रसिद्ध थी।हमारे गाँव में तो पेड़े बहुत प्रसिद्ध थे।तो मैंने कहा -"हाँ", नानी कहता था-"नानी जरूर खाऊँगा।" अब वह गई कटोरे में ले आई। पीला-पीला दिखाई दे। चखा तो साहब खट्टी और बुरी हालत। कहा कि -'यह रबड़ी है?' कि-'हाँ यह राबड़ी है।' और वह राबड़ी कि जिसको दही खट्टा कर के और बाजरा डालकर वह बनाती थीं, और बड़ा खट्टा बनता था। तो इस तरह भाषा के बारे में भी और हरियाणे की भाषा है वह तो बड़ी लट्ठमार, अक्खड़ भाषा है और हाँ कोई हिन्दी जानता ही नहीं था। और मैं ही एक हिन्दी बोलने वाला व्यक्ति था। मगर उसका एक प्रभाव हुआ कि धीरे-धीरे मेरा सम्मान होने लगा। क्योंकि आर्यसमाजी जो थे वे हिंदी के भक्त थे। लेकिन यहाँ शुद्ध हिन्दी बोलने वाले बहुत कम लोग थे। अब मैं शुद्ध हिन्दी बोलता था। तो इससे मेरे प्रति एक आदर का भाव बढ़ा। मुझे याद है मैं बहुत अच्छी हिन्दी बोलता था।

दसवीं पास करने के बाद की बात है। मैंने एक भाषण दिया **आर्यसमाज** में और हमने संस्कृत में हिन्दी में भाषण दिया और बड़े प्रभावशाली ढंग से दिया तो लोग बड़े प्रसन्न हुए और तारीफ की लोगों ने। एक थे .. उन्होंने कहा-"बेटा बहुत सुन्दर बोले, बहुत सुन्दर बोले। ऐसा भाषण मैंने नहीं सुना। लेकिन बेटा थोड़ा ऐसा भी बोला करो जो हमारी समझ में भी आ जाए।" वह पंजाबी थे। उनको लग रहा था कि यह समझ में नहीं आ रहा था। तो मैं क्या समझता इसको प्रशंसा या निन्दा? इस तरह की घटनाएँ वहाँ बहुत होती थीं मगर उसका मुझ पर असर हुआ।

मैं जो बता रहा था वहाँ जाने की बात कि क्यों वहाँ गया। दो कारणों से। एक तो **आर्यसमाज** में मुझे अपने को व्यक्त करने का वातावरण मिला अपने को व्यक्त करने का अवसर मिला। लेकिन बाल जीवन पर एक दूसरे तरह का प्रभाव पड़ा। उम्र मेरी 11-12 वर्ष की थी। माँ-बाप से अलग हो गया, तो इस सारे वातावरण से अलग हो गया मैं, संयुक्त परिवार के वातावरण से। वहाँ मैं आया।

मामा बहुत अच्छे थे। मुझको उन्होंने पढ़ाया और मेरे एक गुरु वे भी हैं। और लेकिन आप जानते हैं कि बच्चा दूसरे परिवार में आता है. अपने परिवार की माँ थप्पड़ भी मारती है तो कोई बात नहीं लेकिन मामी एक थप्पड़ मार दे तो उसका एक बिलकुल अलग प्रभाव बिलकुल दूसरा पड़ता है। तो वहाँ मैं बिलकुल एक अजनबी बन गया थोड़ी-सी अजनबियत वहाँ भी आई थी जहाँ मैंने बताया था कि दो भाइयों के एक स्तर हो गया। बड़े भाई मेरे साथ यहाँ भी आए, मगर यहाँ वातावरण दूसरा था।

प्र०: उनको शायद चाचा ने गोद लिया था।

उ०: हाँ वह भी मेरे साथ पढ़ने के लिए यहाँ आए थे। और यों तो थे ही। गोद ले लिया नाम का। बाकी तो वैसे ही रहते थे।

आर्यसमाज के मुझ पर अच्छे प्रभाव पड़े लेकिन मैंने एक बात देखी कि आर्य समाज में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति बहुत थी।

प्र०: वैसे मैं सोचता हूँ कि यह प्रक्रिया तो प्राचीन प्रक्रिया है विद्वान लोग किसी भी पक्ष को लेते थे, पहले उसका मण्डन करते थे.. नहीं है तो खण्डन करते थे।

उ०: जैसे यहाँ हुआ.. । बाद में मैंने **स्वामी दयानन्द** का अध्ययन किया, पढ़ा तो मुझे लगा कि उनके जीवन में ऐसी बात नहीं थी। कोई ऐसी भावना नहीं थी और उनके **मुसलमान** बड़े भक्त थे और मैंने उसपे बहुत लिखा है बाद में तो लेकिन उस समय ऐसा लगा कि **हिन्दू** वर्सिज़ **मुस्लिम**।

अच्छा गाँव में मैं आपको पीछे ले चलूँ फिर गाँव में भी यह था प्रश्न। लेकिन वहाँ एक अजीब बात थी। मेरे यहाँ मेरे मुसलमान दोस्त आते थे मेरी माँ उनको खाना खिलाती थी। उनके बर्तन बाद में आँच में, अग्नि में पवित्र किए जाते थे। मैं उनके घर जाता था तो उनके परिवार की महिलाएँ बात हमसे करती थीं लेकिन हमको खाना नहीं अपने हाथ से परसती थीं। एक आता था हलवाई वह हमको परसता था। और दूर से ही 'यह खा', 'वह खा' ऐसे प्यार से वे बातें करती थीं। हुक्का अलग था। लेकिन प्यार था। प्यार-मोहब्बत वैसी ही थी तब तक। ये झगड़े-वगड़े शुरू तो होने लगे थे, बाद में हुए ये 1924 के आसपास से आगे ज्यादा हुए हैं।

प्र०: लेकिन गाँव में ऐसा जहर नहीं था।

उ०: नहीं था। मेरे बाबा मुरब्बी थे और उनकी दूकान पर मुसलमान आते थे और ऐसी बातें करते थे। मेरा एक बड़ा प्रसिद्ध नाटक है **मुरब्बी**, इसी नाम से। रेडियो पर बहुत बार प्रसारित हुआ है और राष्ट्रीय कार्यक्रम में भी हुआ है। उसमें मैंने यह दिखाया है कि मेरे बाबा जो थे उनका एक मुसलमान दोस्त था वह किसान था। वह उधार ले जाता था पैसे। मेरे जो चाचा थे एक बड़े चाचा थे वह थोड़ा कठोर किस्म के आदमी थे वह उससे तमस्सुख लिखा लिया करते थे। तीन साल उसकी मियाद होती थी। तीन साल के बाद वह मुकदमा करना पड़ता था। अगर वह न दे पैसे ।

तो एक बार ऐसा हुआ मेरे बैठे-बैठे, जब मैं बैठा हुआ था मेरे चाचा आए और बोले मेरे बाबा से -'चाचा कि, मैं मुनव्वर पर नालिश करने जा रहा हूँ।'तो मेरे बाबा ने उनकी तरफ देखा.. - 'तो मैं क्या करूँ फिर?' -'नहीं कल को तुम कहो कि मेरा यार दोस्त था तुमने मुकदमा कर दिया।' - 'तो यार दोस्त मेरा है। तेरा क्या है? तेरे पैसे चाहिए तू जाने।' चले गए। उसके बाद बोले –'साला मुझसे पूछने आया है। अबे तू नहीं जानता। मुझसे पूछने आया है। मैं क्यों कहूँगा?'

उसके बाद, थोड़ी देर बाद मुनव्वर आ गया। तो वह खाना खा रहे थे बाबा-'क्या बात है?' बोले - 'मुरव्वी बात यह है कि वह द्वारका जो है वो नालिश करने जा रहा है।' तो मैं क्या करूं नालिश कर रहा है तो। तुमने

पैसे नहीं दिए तो नालिश होगी। मुझे अब कहने क्या आया है?' -'तुम उससे कहोगे नहीं?' -'मैं क्यों कहूँगा। मुझे क्या जरूरत पड़ी कहने की?' डाँट दिया, वह चला गया। उसके बाद बाबा उठे और फिर लकड़ी लिए हुए घर आए। बाबा का **घर आना** एक घटना होती थी, क्योंकि मेरी दादी की मृत्यु के बाद वह घर नहीं आते थे। जब वह आते थे तो समझिए कि कोई असाधारण बात है।

प्र०: तो कहाँ रहते थे, दूकान पर?

उ०: दूकान पर। या कोई बीमार है या कोई बात है। तो आए तो उन्होंने मेरी माँ को बुलाया। तो वह घबराई हुई आई, -'क्या बात है?' - 'वह मेरी गुल्लक देखना जरा। उसमें कितने पैसे हैं?' तो उन्होंने कहा कि -'गुल्लक के पैसे तो आपने पीछे मँगवा लिए थे। क्या बात, बात क्या है? कहा-'नहीं बात कुछ नहीं। सौ रुपए मुझे चाहिए। तेरी सासू का गुलुबन्द पड़ा होगा वह ले आ।'

गुलुबंद की बात सुन के वह घबरा गई - 'क्या बात है, बात बताओ।' फिर उन्होंने कहा कि - 'वह साला द्वारिका जो है नालिश करेगा।.. 'तो मैं इसका साक्षी हूं। मैं वहाँ भी था। वहाँ भी खड़ा हुआ था। मेरी माँ अन्दर गई और उसके बाद आई और सौ रुपए ले कर आई कहने लगीं - देखो पचास रुपए तो आपकी गुल्लक में हैं और पचास आप मेरे ले जाइए।' तो बाबा बड़े प्रभावित हुए। मेरी माँ तो चली गई अन्दर। बाबा मुड़े - आखिर है तो मुरब्बी की बहू। वाह-वाह-वाह-वाह। उसके बाद चचा गए हमारे। चचा आ गए तो कहने लगे - 'वह मुनव्वर आया था। तो रुपए दे गया है। मुझे बीच में, झंझट में डालने की क्या जरूरत थी। सम्भाल इन्हें।' दे के चले गए। अब यह घटना मेरी आंखों की देखी हुई है जिसको हूबहू उस नाटक में लिखा है। अब यह ह्यूमन साइक्लोजी का, मानव मनोविज्ञान का कैसा जटिल उदाहरण है।

प्र०: अच्छा एक बात, कि सेक्स का प्रभाव जो बाद में और बदली हुई अवस्था में अधिक उद्दाम होता है उसका अंकुर या बीज कहीं बचपन में ही होता है...

उ०: बिलकुल सही बात है।

प्र०: तो जरा इस पक्ष पर भी कुछ प्रकाश डालिए।

उ०: यह पक्ष, जरा वैसा है, जटिल पक्ष है इसको बताने का..। तो मुझे लगा कि कोई भी चीज जो है, सेक्स से ऊर्जा है। सेक्स ऊर्जा है - हाँ। और कोई भी काम दुनिया में ऊर्जा के बिना नहीं होता। जो सबसे बड़ा भक्त है, जो सबसे बड़ा योगी है और सबसे बड़ा भोगी है, सबसे बड़ा सम्राट है या सबसे बड़ा सेनापति है उन सबके मूल में ऊर्जा है। ऊर्जा का उदात्तीकरण है, रुपान्तरण है। तो **योगी** कैसे उसका रुपान्तर करता है। भक्त कैसे रूपान्तर करता है। लेकिन मूल में उसके - **सेक्स** होता है।

उ०: तो यह तो जो आपने मुझसे पूछी थी, यह बिलकुल सही है कि शुरू से ही एक चीज रहती है।

प्र: तो इस उम्र में क्षमा करें, आपकी नारी के प्रति जो दृष्टि है उसको किस रूप ने प्रभावित किया?

उ०: नारी के प्रति दृष्टि में मेरे सामने जो बात रही है वह मेरे प्रारम्भिक जीवन में मेरी माँ रहीं। और भी नारियाँ आईं और मैं आपको एक उदाहरण दे के बताऊँगा कि उस वक्त उस चीज को कैसे मैं समझ नहीं पाया था तब। जो आप सेक्स की बात कह रहे थे। देखिए जब भी नारी का प्रश्न मेरे सामने आता है तो वह मेरी माँ मेरे सामने आ खड़ी होती है। और उसके बाद मेरी पत्नी। जब मैं लिखता हूँ तो उस वक्त मैं विवश रहता हूँ। उससे बाहर जाने की हिम्मत मुझमें पड़ती नहीं है। मैं नारी का अपमान नहीं कर पाता। लेकिन आपने पूछा है तो एक घटना बताता हूँ।

उन्हीं दिनों की घटना है। मैं मेरठ में था। मेरठ में मेरी बुआ रहती हैं। तो जब मैं पंजाब से लौटा करता था तो बीच में मेरठ रुक कर ही आया करता था गाँव। वहाँ मैं बैठा हुआ था बाहर, सामने एक परिवार रहता था ऊपर। तो इशारा कर के एक महिला ने मुझको बुलाया। मैं ऊपर चला गया। डरते-डरते गया। तो उसने कहा - 'आओ बेटा एक बात है। तुम पढ़ते हो?' मैंने कहा, "जी हाँ।" – 'कौन-सी क्लास में?' मैंने कहा – 'छठी क्लास में।'–'बच्चा तो यह चिट्ठी पढ़ दोगे?' अब चिट्ठी जो हमने पढ़नी शुरू की तो उसका अर्थ तो तब हम जानते नहीं थे तो किसी लड़के ने किसी लड़की को वह चिट्ठी लिखी थी **प्रेम पत्र**। हम तो पढ़ गए उसको। पढ़ने के बाद साहब वह महिला जो थीं वह सुनती रहीं और उनका रंग बदलता रहा। बड़ी सुन्दर महिला थीं। और हमको बड़ा प्यार किया। और अन्दर गईं और खीर बताशे क्या ले कर आईं बोली-'ये खाओ।' तो मैंने पूछा कि 'यह किसका पत्र है? किसको लिखा है? 'ऐसे ही पूछ लिया। कहने लगीं -'तुम्हारे बगल में जो मन्दिर है, उसका जो पुजारी है उसके लड़के का पत्र है यह। तुम्हारे इधर के मकान में जो रहती है उसको लिखा गया है।"

हमारी समझ में तो आया नहीं कि लड़के ने लड़की को पत्र लिखा है इसमें बुरी बात क्या है? लेकिन वह महिला उसमें बड़ा रस ले रही थीं। पत्र सुनते समय भी उनकी स्थिति बड़ी रसमय थी। तो बाद में मैंने यह कहानी जब लिखी, इसको मैंने इसी रूप में, लघु कथा रूप में लिखा। तो मैंने इसमें एक लाइन लिखी थी बाद में कि - या तो वह नारी स्वयं बहुत कामुक रही। या वह बहुत ऊँचे स्तर पर बात कर रही थी। मेरी समझ में यह नहीं आया था लेकिन जैसे मैंने कहा मेरे अनकांशियस में, मेरे अचेतन में यह चीज काम कर रही थी। तो जो आप सेक्स की बात कह रहे हैं कि अचेतन में यह चीज रहने से अन्दर ही अन्दर घुमड़ती रहती है उसको उदाहरण मिलते रहते हैं। आप बच्चे हैं आप समझ नहीं पाते। गाँव में भी जैसे एक घटना हुई। घटना में से घटना निकलती है। एक पंचायत रखी बड़ी। पंचायत तो लगती थी गाँव में। पंचायत का हमारी समझ में नहीं आता था कि क्या था उसमें। पहले पंचायत बैठी मेरे सामने तो उसमें एक व्यक्ति था वह जाति से बाहर निकाल दिया गया। तो क्या कसूर था कि एक गैर जाति की लड़की को घर में रख लिया था उसने। अब सवाल यह था कि चाचा लोग और माँ और सब चाचियाँ बात करें और वह स्पष्ट बात करें सारी और उसको हम सुनें। तो हमारे उपचेतन में वे सारी जमा होती रहीं। साल बाद फिर हमने देखा- फिर पंचायत

बैठी।और फिर वह ही आदमी।उसको जाति में दाखिल कर लिया गया।क्योंकि उस पर कुछ जुर्माना किया गया था, वह उसने पूरा कर दिया और उसको जाति में लाने का क्या तरीका था कि पंच हुक्का लिए बैठा था, पंच ने पहला कश लगाया और उसने दूसरा उस आदमी को दिया।उसी ने फिर कश लगाया और वह पंचायत में दाखिल कर लिया तो यह दृश्य मैं एक बालक की तरह..।

प्र०: इसीलिए कहते हैं **हुक्का पानी** बन्द।

उ०: और हुक्का पानी खोल दिया गया।तो ये सब चीजें थीं। मगर इन सबके पीछे सेक्स था। इन सब कहानियों के पीछे सेक्स था जो हम बाद में समझते रहे ।और एक और भयानक बात जिसको मैं कहूँ कह तो नहीं पाऊँगा. .।हमारी दूकान के सामने एक वृद्ध पंडित थे वह कपड़े की दूकान में बैठते थे। और वह हमसे बात करते थे बड़ी.. बात। विशुद्ध स्त्री-पुरुष की बात करते थे वह। और ऐसी बात तब तो हमारी समझ में तो आती नहीं थी और हाँ बाबा सुनते-सुनते हँसते रहते थे।जब हम बड़े हो गए तो हमको लगा कि यह जो सेक्स है न यह किस तरह से जीवन में, जीवन को किस तरह से प्रभावित करता है। और दमन सेक्स का किस तरह से फूटता है। वह जो पंडितजी थे..।कुरूपता के साथ वह फूटता था।तो इन सब चीजों का असर हमारे ऊपर पड़ता था।और यह भी पड़ता था कि जब पढ़ते थे तो गाँव में हमारे यहाँ एक वेश्या थी पूरे गाँव में एक, दुर्भाग्य से जो हमारा सरकारी स्कूल था उसके सामने। तो मुनव्वर जो हमारे मुसलमान मित्र आते थे बताया करते थे कि -देखो- वह सामने रहती है। 'कौन है?' कहने लगे विशुद्ध भाषा में - 'रंडी'। - 'रंडी है अब क्या करती है?" तो फलाना आदमी वहाँ आता है, फलाना आता है।' तो ये धीरे-धीरे समझ में आते रहे। समझ में आते रहे तो उनका प्रभाव पड़ा। कभी-कभी लगता था अकेले में जाते थे वहाँ देखते थे झाँक कर, घर में क्या हो रहा है। यह तो फिर इस तरह की प्रश्नाकुलता पैदा होती थी तो इसमें फिर उस समय अगर कोई हमको समझाने वाला होता..।सेक्स के बारे में हमको शिक्षा देने वाला होता, बताता..।शायद उसका उतना कुप्रभाव न पड़ता जितना कि पड़ा। क्योंकि कोई चीज अन्दर देखती है न, तो ज्यादा भयानक रूप से उसका विस्फोट होता है।

तो यह सौभागय से एक बात यह हुई कि मैं **आर्य समाज** के प्रभाव में चला गया।वहाँ उन चीजों का उदात्तीकरण था। हालाँकि वह दूसरे एक्स्ट्रीम पर ऊँचाइयों की बात करते थे। दूसरा चरमबिन्दु था। एक यह चरम बिन्दु था। दोनों ही जिसको कहते हैं न कि-असंयम और अतिसंयम। तो दोनों स्थितियों में से हम गुजरे अतिवाद और यह वाद था ये बातें थीं जिनका हमारे ऊपर प्रभाव पड़ा। लेकिन एक जो था आर्य समाज का प्रभाव जिसके संयत प्रभाव से असंयत मैं नहीं हो पाया कि खुल कर कहीं खेलने की नौबत आई या कोई बुरा प्रभाव पड़ा हो? अन्तर मन में पड़ा हो तो पड़ ही रहा था घटनाएँ होती रहीं लेकिन अपने को संयत कर लूँ यह मेरी प्रवृत्ति बनती आई।

आर्य समाज का यह प्रभाव मेरे जीवन पर शुरू से रहा फिर उससे आर्य समाज का नहीं बल्कि मैं यह स्पष्ट कहूँगा मेरे मामा का प्रभाव क्योंकि उनका सारा नियमित होता था जैसे सवेरे हमको चार बजे उठा देते थे

कि - 'बैठकर पढ़ो।' और दस बजे से पहले-पहले वह कह देते थे - 'जा कर सो जाओ।' और वह खाने-पीने का, खाने-पीने में वह उनको जो शौक था वह हमको भी खिलाते थे। दूसरे उन्होंने कभी हमको मारा हो यह याद नहीं पड़ता। हमने चोरी भी की उनकी, लेकिन वह कुढ़-कुढ़ा के रह गए। सजा-वजा नहीं दी हमको। मेरे पर उनका बहुत गहरा प्रभाव है। हमेशा जरा वह एक बात जरा-सी उन्होंने कह दी या यूँ गाल पे छोटा-सा तमाचा लगा दिया हो, इससे ज्यादा उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा।

प्र०: मामा का व्यवसाय क्या था?

उ०: वह दफ्तर में काम करते थे जो पंजाब की विश्व की सबसे बड़ी प्रसिद्ध **गऊशाला** - दो ही गऊशाला एक अमरीका में थी, एक हिसार में है। अब तो वहाँ बहुत बड़ा एग्रीकल्चर फॉर्म है और गऊशाला भी अब भी है। कैटल फॉर्म कहलाता था उस समय.. तो उसमें वह हैड क्लर्क थे। पहले उनके श्वसुर हैड क्लर्क थे बाद में वह हैडक्लर्क बने। और उसके बाद 15 साल विंग्स में मैंने नौकरी की है, उसी ड़ेरी फार्म में। तो वहाँ वह काम.. । उनका बड़ा सम्मान था बहुत ही, मतलब सुचरित्र व्यक्ति माने जाते थे। और बाजार में निकलते थे तो सब उनको नमस्कार करते थे और बहुत सीधे-सादे। कपड़े पहनने का उनका सलीका नहीं, उलटा कोट पहन के निकल गए तो निकल गए। और उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली अपने जीवन में। उनका रिकॉर्ड है। कभी रिश्वत नहीं उस जमाने में। और उनके कारण नीचे वाले भी ये काम करने की हिम्मत नहीं कर पाते। जो वह उनका चरित्र इतना ऊँचा था इसलिए आर्य समाज के बहाने उनका चरित्र मुझ पर पड़ा और आज तक संयमित प्रभाव मुझ पर रहा है। अन्तर में मेरे टूटन है, खींचन भी हुई है सब कुछ हुआ है लेकिन बाहर मैं अपने को संयमित कर सका और चीज को मैं.. मतलब हरजाई नहीं हो पाया, जिसे कहना चाहिए। प्रेम और ये सब चीजें चलती हैं जीवन में आते हैं जैसे इस तरह की चीजें सारी हुई लेकिन एक मर्यादा के साथ-साथ। अमर्यादित कोई चीज नहीं हो पाई। आगे मैं आपको बताऊँगा बहुत सारे उनके अनुभव को, लेकिन बचपन की ये चीजें थीं कि आर्य समाज के प्रभाव होने से और इसके साथ-साथ ही आप देखेंगे कि दूसरा प्रभाव पड़ रहा था - गाँव, की बताई, **गाँधीजी** का प्रभाव वह बहुत तेजी से पड़ रहा था।

चौबीस में जब पंजाब में आया था तो उस समय **गाँधी** का ऑपरेशन हुआ था बहुत जबरदस्त उस समय एपेंडिसाइटिस का ऑपरेशन बहुत महान ऑपरेशन माना जाता था। और वह बच गए थे और उसके बाद कुछ साल तक यह राष्ट्रीय आन्दोलन कुचला हुआ-सा माना जाता था। लेकिन 28-29 में फिर तेजी से उभरा और मैं क्योंकि कांग्रेस के संस्कारों में पला था तो मैं राष्ट्र के उस में जाना चाहता था। लेकिन हुआ यह कि दसवीं तक पहुँचते-पहुँचते मेरे परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई। ये जो कुछ पैसा वहाँ भेजते थे नहीं भेज पाएँ मेरे मामा ही हमको पढ़ाते रहे। मेरी बहुत इच्छा थी कि मैं स्कूल, हाइस्कूल पास कर कॉलेज में जाऊँ। तो मैं कालेज में नहीं जा पाया इसका मेरे मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। और मैं निराशा से बिलकुल भर गया, टूट गया। दूसरा जो निराशा का प्रभाव यह हुआ जो गाँधीजी का आन्दोलन तेज हुआ। उस समय तो हम काँग्रेस उसमें थे तो मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं 30 के आन्दोलन से शुरू करूँ अपने को।

क्योंकि रावी के किनारे स्वतन्त्रता संग्राम का जो प्रस्ताव पास हुआ था और **भगत सिंह** और **सुखदेव** ये भी वहीं रहते थे और **नौजवान भारत सभा** वहीं खुली.. उसके सारे मैम्बर्स हमारे मित्र थे।

प्र०: अच्छा उस समय के जो आपके प्रिय क्रान्तिकारी रहे हैं, उनका नाम बताएँ।

उ०: काँग्रेस में मेरे सबसे प्रिय **महात्मा गाँधी**।

प्र०: नहीं मेरा मतलब है क्रांति.. ।

उ०: मैं बता रहा हूँ।और उसके बाद काँग्रेसियों में जवाहर लाल थे।मैं अपने स्वभाव से गाँधी की तरफ था।लेकिन अपने विश्वास से मैं जवाहर लाल जी के साथ था।इसी तरह से जब भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु ये सब तो उग्र होते हुए भी हमारे मन में बड़ी ममता थी। हमारे मन में, आपको आश्चर्य होगा कि मैंने **भगत सिंह** की **जीवनी** लिखी है। यानी विशुद्ध गाँधीवादी होते हुए भी मैंने जीवनी उनकी लिखी। क्योंकि मैं यह मानता था कि हिंसा हो या अहिंसा हो, देश पर प्राण निछावर करनेवाला व्यक्ति महान होता है।

प्र०: बलिदानी !

उ०: बलिदानी पुरुष जो होता है, चाहे वह गाँधी के रास्ते पर हो चाहे.. गाँधी जी भी उनको महान मानते थे। वह यह कहते थे कि मेरे रास्ते पर चलें तो वह और भी अच्छा है, नहीं चलते तो मैं उनको **देशभक्त** तो मानता ही हूँ। यह उन्होंने सुखदेव के पत्र के जवाब में कहा और बाद में सुखदेव के छोटे भाई से मेरे गहरे सम्बन्ध हुए जो हापुड़ में रहते हैं और सुखदेव का पत्र ले कर वह स्वयं गाँधीजी के पास गए थे... । अब तो वह बहुत वृद्ध हो गए हैं।उन्होंने बहुत से किस्से सुखदेव के मुझे सुनाए।उसमें जो हमारे बहुत-से **नौजवान भारत सभा** के जो मित्र थे या मैं जब लाहौर में परीक्षा देने जाता था तो हाइकोर्ट में मुकदमा देखने भी जाता था। तब **भगत सिंह** तो नहीं रहे थे लेकिन उसके बाद के दूसरे काँग्रेसी कॉस्पिरेसी केस सैकेंड.. और शाम लाल उसके एडवोकेट हुआ करते थे रोहतक वाले, उनके पास मैं जाता था। और **भाई परमानंदजी** भी उस समय क्योंकि बड़े भारी क्रांतिकारी थे उनसे मिलने के लिए हम गए थे।उस समय उनके **हिन्दू महासभा** के विचारों से हम सहमत नहीं थे, लेकिन वह अंडमान में रह चुके थे। उनके दर्शन करने के लिए मैं गया। मैं और मेरा एक मित्र। और उनका - मुझे अब तक याद है, उन्होंने मुझसे पूछा 'कि बेटा कैसे आये हो?' मैंने कहा - 'हम भाई परमानन्द जी के दर्शन करने आये हैं।' तो उन्होंने कहा -'अच्छा बैठो।' हम बैठे, छोटी-सी बैठक थी। बिलकुल साधारण सी-दो कुर्सी पड़ी। वह एक सज्जन अन्दर से आए गले में दुपट्टा डाले हुए। आराम कुर्सी पर बैठ गए। कहने लगे - 'कहो'। क्या बात है?' हमने कहा -'आप बड़े इतिहासकार थे, आप आन्दोलन में रहे हैं हम केवल आपके दर्शन करने आए हैं।' तो वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने चकवाल की रेवड़ियाँ खिलाई हमको। चकवाल की रेवड़ियाँ बहुत मशहूर थीं उस ज़माने में।

प्र०: आपने बहुत महत्वपूर्ण बात कही। यहीं मेरे मन में यह जिज्ञासा उठी कि समाज या परिवार या परिवेश के जो संदर्भ हैं वे कथा को एक स्थिर आधार दे सकते हैं। लेकिन स्वयं लेखक की विचारधारा को भी ये प्रभावित करते हैं। तो आप अपने युग की जो विषमताएँ थीं जो अच्छे और बुरे पक्ष थे, उनसे वैचारिक रुप में किस रूप में प्रभावित हुए?

उ०: प्रभावित तो मैं हुआ, क्योंकि अगर मेरे साहित्य का अध्ययन करे कोई शुरू से, तो वे प्रभाव स्पष्ट मालूम होते हैं। पहला प्रभाव मेरा - **वैष्णव** था। तो वह जो मेरी मूल प्रवृत्ति वैष्णव होने की है, वह आज भी मौजूद है। यानी उसके ऊपर के संदर्भो से मैं टूट, अलग हो गया लेकिन वह जो मूल वैष्णव होता है न, वह मौजूद है। **आर्यसमाज** भी उस चीज को मिटा नहीं सका। तो मेरे पर आर्यसमाज का प्रभाव सुधारवाद का बहुत देखा जा सकता है। शुरू में यह है। और वह प्रभाव कभी-कभी थोड़ा अनिष्टकारी भी हुआ।

प्र०: क्यों?

उ०: क्योंकि अति हो जाने से कला को क्षति पहुँचती है। आप तो स्वयं लेखक हैं, जानते हैं कि कथ्य होता है, शैली होती है, भाषा होती है, तीन चीजें बहुत जरूरी होती हैं। तो कथ्य जब महत्वपूर्ण हो जाता है तो शैलीगत कला है वह उसको हानि पहुँचती है। और वह मेरी प्रारम्भिक चीजों में दिखाई देती है। लेकिन ऐसा हुआ कि यह प्रभाव पड़ते-पड़ते दूसरा प्रभाव इससे ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया। वह प्रभाव था-**गांधी** का। जैसा मैंने कहा कि परिवार हमारा था - कॉंग्रेस की तरफ रुझान रहा उसका - परिवार का। गाँधीजी के प्रति हमारी बहुत ममता थी, श्रद्धा भी थी। इसीलिए गाँधी का भाव बहुत तीव्र हो गया। तो गाँधी के प्रभाव ने एक मोटे शब्दों में कहते हैं हम कभी-कभी कहा करते थे कि **आर्यसमाज** की वजह से हमारे कपड़े गेरुवे हो गए। लेकिन **गाँधी** के प्रभाव से फिर वे स्वच्छ हो गए। श्वेत वस्त्र हो गए। इस प्रभाव को गाँधी ने धो दिया।

उस जमाने में एक तरह से कहना चाहिए कि आर्य समाज घेरों में घिर गया था, दायरों में उसने बहुत-से दायरे जोड़े। लेकिन कुछ अपने आप फिर स्वयं दायरों में फँस गया। गाँधी जी ने आकर के मनुष्य की चेतना को जगाया। मैं उदाहरण एक नारी के संदर्भ में देना चाहूँगा। और मैंने एक नाटक भी लिखा था, रेडियो में ब्रॉडकास्ट भी हुआ था- **युगे-युगे क्रान्ति**, जिसमें मैंने यह दिखाया था कि सौ साल में नारी कहाँ से कहाँ पहुँची है। तो वह जो संदर्भ मैंने लिया था कि - मेरे नाना जो थे उन्होंने हमको एक कहानी सुनाई थी। नाना हमारे बहुत ही उदार विचारों के थे , थे तो सनातनी, लेकिन बच्चों से बातें करने में बड़े उदार थे। तो मुझसे कहने लगे कि -"देखो तुम क्रान्ति-क्रान्ति चिल्लाते रहते हो.. - उस समय आर्य समाजी बन गया था न मैं। क्रांति मैंने की थी। मैंने कहा -"नाना जी आप दकियानूस हैं, मूर्त्ति पूजक हैं हम क्रांति करेंगे।' तो उन्होंने कहा -"बेटा हमने तुम्हारी **नानी** का **दिन** में मुँह देखा था। अब इस चीज को आज का आदमी तो समझ नहीं पाएगा। उस समय यह था कि जब तक पिता जीवित हैं पुत्र अपनी पत्नी का मुँह नहीं देख सकता, यह अनरिटन लॉ था। अलिखित।

प्र०: दिन में मिल ही नहीं सकते?

उ०: मिल ही नहीं सकते। तो मैंने कहा -"कैसे हुआ नाना जी?" तो कहने लगे -"एक दिन रात को हमने कहा उनसे, तुम्हारा मन नहीं करता हमारा मुँह देखने को? तो पहले वह घबरा गई, कुछ कहने लगीं बाद में बोलीं -"करता तो है।"

'तो फिर मेरा भी करता है।'

'तो कोई रास्ता निकालो।"

तो ऐसा था कि वह दूकान से आते थे, दोपहर को खाना खाने। उसके बाद आदत थी कान में जनेऊ चढ़ा के पेशाब करने जाने की। और तब बहुएँ ऊपर बैठी रहती थीं। तो उन्होंने कहा कि 'अच्छा हम थोड़ी देर से आएँगे और तुम लोग नीचे उतरने लगना तो जीने में मुलाकात हो जाएगी।'

'अच्छा मुलाकात हो गई?' मैंने पूछा नाना जी से।

तो बोले-'हाँ हो गई।'

- फिर कहने लगे-'क्रांति.. हुई।'

मैंने कहा -'कैसे'?

बोले – 'पिताजी को पता चल गया। और पिताजी ने भरे बाजार में हमको नीम से टाँग कर के कमचियों से पीटा। तो बोले "बेटा ऐसी क्रान्ति तुमने की है कभी?" तो हमने कहा - 'नाना जी ऐसी तो हम नहीं कर पाएँगे।' -"देख लो हमने की थी क्रांति।" तो मैंने लिखा है कि - नारी की क्या स्थिति थी।" फिर आर्य समाज का प्रभाव हुआ। आर्य समाज ने कहा -"कैसा पर्दा? लेकिन एक सीमा बाँध दी उसने कि यहाँ तक। मतलब कि माथे तक। माथे से ऊपर चले जाने पर, मेरी बहन पिटी थी। पिताजी से, मामाजी से।

प्र०: नंगा सिर नहीं होना चाहिए।

उ०: हाँ, नहीं होना चाहिए। फिर गाँधी आए। उन्होंने कहा कि - 'यह क्या पल्ले-वल्ले की बात करते हो? लड़ाई के मैदान में उतरोगी तो पल्ला सम्भालोगी? कंधे पे पड़ा रहेगा, पड़ा रहने दो।"

तो यह जो एक विकास धीरे-धीरे सुधार या हमारा समाज बनता चला गया जो आज आपको दिखाई दे रहा है अच्छा या बुरा जैसा भी है - इन सारी चीजों का प्रभाव लेखक के ऊपर पड़ता है। इसलिए इस सारी (बातों) से मैं गुजरा हूँ। और मैंने अपने साहित्य में इस सब को स्वर दिया है जैसे यह नाटक मैंने लिखा। आखिर में मैंने यह दिखाया है कि लड़की जो है अपनी शादी का कार्ड पिताजी को भेज देती है कि 'फलाने दिन

पे शादी है मेरी आ जाइएगा।" तो कहाँ से कहाँ हम सौ साल में पहुँच गए हैं। सारी प्रक्रिया का, उस सारी प्रगति का (आभास) आज आप साहित्य में देख सकते हैं।

देखिए मैं **प्रेमचंद जी** का उदाहरण दूँ आपको। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास भारत सरकार ने बहुत लिखाने की कोशिश की। कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं है। लेकिन उस समय के साहित्यकारों के साहित्य के अंदर वह सारा प्रामाणिक इतिहास है। प्रेमचन्द के **सेवासदन** से **गोदान** तक की यात्रा में जो **रंगभूमि, कर्मभूमि** ये सारे प्रयास हैं **गाँधी** के हर युद्ध-सत्याग्रह के पूरे इतिहास हैं, या **खांडेकर** के हैं या बंगाल में मिलेंगे आपको, क्रांतिकारी युग में मिलेंगे। **शरत्** वाले में जो **पथेर दाबी** है वह ही इतिहास है क्योंकि उसमें जनता है। जो सरकारी इतिहास लिखा जाता है उसमें नेता होता है। उसमें चर्चा होगी गाँधी की, जवाहर लाल की, इन सबकी। जनता को कोई नहीं जानता। लेकिन साहित्यकार जो है वह उस युग की जनता को चित्रित करता है।

प्र०: वह पारम्परिक या क्लैसिक या ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे जाते हैं। लेकिन साहित्यकार की दृष्टि भिन्न होती है।

उ०: भिन्न होती है। वह उससे जुड़कर लिखता है वह नहीं जानता कि इतिहास क्या होता है। लेकिन सच्चा इतिहास वह ही होता है। आप अगर, किसी युग का अध्ययन करेंगे तो उस युग के उपन्यास निकालने पड़ेंगे। देखना पड़ेगा कविता, उपन्यास में क्या है। तो इस तरह से आप हम कहीं कट नहीं सकते किसी चीज से। उदाहरण पर उदाहरण दिए जा सकते हैं विश्व-साहित्य से भी और अपने से भी दे सकता हूँ। मेरे तो सारे आपको मिल जाएँगे जो भी हैं, इस तरह से। तो मैं इसे मानता हूँ कि समाज के संदर्भों से परिवार के संदर्भों से कट कर के कोई साहित्यकार और इसको अगर एक शब्द में कहूँ मैं कि अपनी भूमि से कटकर कोई भी अच्छा लेखक नहीं हो सकता। **वात्स्यायन जी** ने यह बात बहुत बाद में स्वीकार की है और उन्होंने कहा कि 'आज मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि अपनी भूमि से कटकर कोई साहित्यकार नहीं हो सकता।'

प्र०: हमारे यहाँ एक उक्ति है संस्कृत साहित्य में - जिसमें ऋषि को परिभाषित किया है और कहा है -ऋषयः मन्त्रदृष्टारः। वह मन्त्र का रचयिता, नहीं मंत्र का दर्शन करता है। तो इस बात से एक यह ध्वनि निकलती है कि वह जीवन भोग के आधार पर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता बल्कि आत्मा और अन्तश्चेतना के जो निर्णय होते हैं, उनके आधार पर..।

उ०: भोक्ता और दृष्टा दोनों ही होता है वह...।

प्र०: तो वहाँ उसका दृष्टा, भोक्ता से प्रबल हो जाता है।

उ०: नहीं तो। वह तो अगर दृष्टा नहीं होगा तो भोगा हुआ यथार्थ उसके काम नहीं आएगा। दृष्टा तो उसे होना ही पड़ता है।

प्र०: अच्छा इसी प्रसंग में एक और जिज्ञासा उभरी कि जो स्त्री के व्यक्तित्व का विकास हुआ सामाजिक दृष्टि से, आपकी अपनी राय में वह विकास कितना हितकारी था और कितना घातक? कि आपके समय की जो स्त्री थी उसके कौन-से सशक्त पक्ष थे, और वही सशक्त पक्ष विकास की प्रक्रिया में क्षीण होते हुए और अधिक सशक्त पक्षों को सामने लाए या दुर्बलता को सामने लाए?

उ०: देखिए, वह तो दोनों ही चीजें होती हैं जब समाज में परिवर्तन होता है। और नारी की स्थिति एक समय बहुत ही दयनीय हो गई थी। बहुत सताई गई थी। जब प्रतिक्रिया हुई तो यह स्वाभाविक ही था कि जो दोषी पक्ष है या जिसे परनाला जब टूटता है न बड़ी तेजी से तो उसके साथ गंदा पानी भी आ जाता है। तो यह स्वाभाविक है कि उसमें जो बुराइयाँ पैदा हुई, क्योंकि तटस्थ भाव वहाँ नहीं रहा। वहाँ दृष्टापन जो है वह नहीं रहा है। तो आज की नारी जो है,... हमारे समय की नारी में जितने गुण थे, वे गुण कुछ इस कारण भी थे कि उसने यह मान लिया था कि वह पुरुष से कहीं हीन है। यह एक उसमें संस्कार पड़ गया था या संस्कारों के जो गुण होते हैं खांचे ये बहुत गहरे हो जाते हैं। मान लीजिए एक बलात्कार होता है किसी नारी से, उसका कोई अपराध नहीं है बल्कि कुछ अपराध नहीं है। लेकिन **बलात्कार** होते ही वह नारी पतिता, अपराधिनी सब कुछ हो जाती है। और दु:ख यह ही है कि वह अपने को मान लेती है। जो बात आप कह रहे थे कि एक बहुत वृद्धा से एक इंटरव्यू - भेंटवार्ता इसी बारे में हुई जिसका कि विवाह होने के तुरन्त बाद एक बलात्कार हुआ। उसके पति ने उसको कुछ नहीं.. वह समाज में रही पति, पुत्र, बच्चे भी हुए समाज में स्थान भी उसका रहा, वह पति बहुत अच्छे थे। लेकिन उसने एक वाक्य कहा था कि -"सब कुछ होने के.. आज मुझे सब सुख दुनिया के प्राप्त हैं और सम्पन्न हूँ। परिवार है और आदर है, सत्कार है। लेकिन मेरे अन्तर में एक वेदना है कि मेरे साथ यह हुआ है। मैं पापिन हूँ।" यह संस्कार जो है नारी में रहा है और यही संस्कार उससे कभी-कभी ऐसे काम भी करवा लेता है प्रतिक्रिया स्वरूप।

प्र०: अच्छा देखिए एक विलक्षण बात है कि हमारे समाज में **चरक** जो आयुर्वेद के विधाता हैं, उनकी दृष्टि यह रही कि स्त्री पुरुष से संग करने के बाद जब मासिक धर्म होता है तो उस मासिक धर्म की प्रक्रिया से स्त्री पुनः कुमारीवत् हो जाती है।

उ०: जी हाँ।

प्र०: और यदि वह विजन्या हो गई गर्भिणी हो गई तो प्रसव के बाद फिर वह कुमारीवत् हो जाती है। क्योंकि पुरुष को तो सम्भोग दोष कभी लगा नहीं। केवल स्त्री ही बेचारी इस पाप बोध को ढोती रही। तो जब ऐसा चिंतन रहा जो इतना स्पष्ट था वैज्ञानिक था केवल किसी क्रांतिकारी का सपना नहीं था। तो फिर यह.. कैसे शुरू हुआ कि स्त्री की सारी पवित्रता उसके शरीर से जुड़ गई? जबकि उसे असूर्यपश्या होना उसके लिए गौरव की बात हो गई पर पुरुष का स्पर्श भी उसके लिए हीन था। वे सामाजिक परिस्थितियाँ..
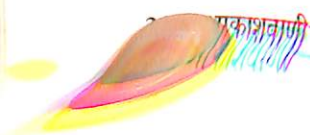
उ०: शर्मा जी जो हमारे इतिहास पर हम देखें, तो इतिहास में इस देश में आक्रमण पर आक्रमण होते रहे हैं। और आक्रमण का सबसे पहला शिकार **नारी** होती है। क्योंकि जब वह जीत कर ले जाता है तो दास और नारियाँ ले जाता है। तो उस प्रक्रिया में नारी को बचाने के लिए असूर्यपश्या-उसको घर में बंद कर दिया गया। और उसको परपुरुष छूने को पाप मान लिया गया। यह हजारों वर्ष में हुआ यह एक दिन में नहीं हुआ होगा। क्योंकि आप देखेंगे छठी शताब्दी तक ऐसी कोई बहुत बड़ी बात नहीं है.. या हर्ष के जमाने में भी यह प्रश्न उठने लगा।

पहले यह प्रश्न उठता भी नहीं था। अच्छा बहुत हमारे पुराने शास्त्रों में जो मिलता है मेरी मान्यता यह है कि ये बहुत बाद में उसमें जोड़ दीं गई चीजें। जैसे महाभारत है। महाभारत तो मूल बीस हजार श्लोक का है। इस वक्त डेढ़ लाख का है। तो एक लाख तीस हजार श्लोक तो बाद में जोड़े गए न। तो उसमें जैसे पूरा यह **राजनीति** वाला **पर्व** जो है और **शन्ति पर्व** जो है ये सारे के सारे बाद में जोड़े गए। या **राम** की कथा के साथ **शूद्रक** वाली कहानी। या मैं तो मानता हूँ कि सीता वनवास की कहानी भी मूल **रामायण** में नहीं है। देखा जाए तो है नहीं उसमें।

बाद में यह जैसे-जैसे समाज में बंधन आते गए, मूल्य बदलते गए तो वे चीजें जुड़ती चली गई हैं। और हमने यह मान लिया क्योंकि नारी को बंद कर दिया घर में उसका काम सिर्फ घर में खाना-पीना, एक तरह से नौकरानी दासी की तरह रह गई वह। अच्छा जब महापुरुष धीरे-धीरे आए उन्होंने इस बात को सोचा कि नारी तो बाहर आनी चाहिए। इसको उतना ही ज्ञान मिलना चाहिए। सारा कुछ होना चाहिए। **स्वामी दयानन्द सरस्वती** अंग्रेजी पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन उन्होंने ही वेदों के आधार पर यह सारा प्रमाणित किया कि नारी की तो सोलह वर्ष से कम में शादी नहीं होनी चाहिए। उसको पूरी शिक्षा मिलनी चाहिए। हालाँकि यह उस जमाने के साथ उचित था कि उनके स्कूल अलग हों और यह अलग हों ये जरूर रहा। लेकिन उसको पूरे अधिकार उन्होंने दिए कि जब तक माँ नहीं होगी। लेकिन हमारे यहाँ यह हुआ जो आप कह रहे हैं परिवर्तन हुआ कि माँ बनाकर भी हमने नारी को पहले पत्नी बनाया। एक उदाहरण मैं आपको दूँ **रामायण** का।

जब राम वन जाते हैं तो कौशल्या के पास जाते हैं आज्ञा माँगने। तो कौशल्या उनसे कहती है राम से कि -"समाज में बड़ा कौन है?" तो बड़ी तो माँ है। तो मैं माँ, तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि वन में मत जाओ।" तो राम कहते हैं कि -"माँ सोच लो।"

तो एकदम से कौशल्या कहती है - "सोच लिया। जाओ वन। कि जिसने तुमको आज्ञा दी है वह तो मेरा पति परमेश्वर है।" ये जो चीजें हैं धीरे-धीरे जुड़ती रहीं हमारी सामाजिक व्यवस्था के साथ। इस तरह से नारी धीरे-धीरे अध:पतन की ओर चलती रही। और इसके और दूसरे भी कारण हैं जो आपके, बॉयलोजिकल कारण भी आप कह सकते हैं। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध स्वाभाविक हैं उसको भी आप कह सकते हैं।

तो यह सारी बहुत जटिल समस्या है और आज भी नारी स्वतन्त्रता-जो आवाज उठ रही है, उसको भी हम यह नहीं कह सकते कि यह सही है। क्योंकि उसमें जो प्रतिक्रिया स्वरूप यह आई है.. । योरोप में तो आपने पढ़ा होगा कि वह तो मानती हैं कि हमको यह पूरा अधिकार होना चाहिए विवाह से पहले संबंध रखने का और यह अब तो हमारे यहाँ वैसे ही मिलने लगे हैं। क्योंकि फैमिली प्लानिंग हो गया है। उस तरह से पहले ही माँग हो गई थी कि भई हमको सब मुहैया होनी चाहिए, हमको ये अधिकार होना चाहिए।

प्र०: जैसे वे कहते हैं प्रीमेरिटल सैक्स।

उ०: प्रीमेरिटल सेक्स। लेकिन मैं यह समझता हूँ कि यह एक जिसे कहते हैं न बीच का समय है। अभी नारी ने अपने को पहचाना नहीं है। पुरुष ने तो अभी उसको पूरे अधिकार नहीं दिए हैं अब वह जिस दिन पहचानेगी - मुझे **अमृता प्रीतम** की - चाहे कुछ भी कहिए, मुझे उनकी एक लाइन हमेशा याद रहती है कि "अगर नारी ने अपने को **सेक्स सिम्बल** के रूप में रखा तो वह आगे नहीं बढ़ पाएगी।" यह सेक्स सिम्बल वाली धारणा जो है, यह नारी के मन से हटानी पड़ेगी।

... ...

प्र०: अच्छा एक बात बताइए कि उस समय अखबार तो बहुत कम थे और जो थे भी, वे सबको सुलभ नहीं थे। रेडियो भी एक बड़ी दुर्लभ चीज थी। एक मीरापुर जैसे गाँव क्या, छोटी बस्तियों में कोई एकाध सैट ही होता था या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। फिर भी ये सब प्रभाव जो राष्ट्रीय स्तर पर आन्दोलन चल रहे थे, उनका गाँधीजी नेतृत्व कर रहे थे, नेहरूजी नेतृत्व कर रहे थे, ये प्रभाव आम आदमी तक कैसे पहुँचते थे? और मैंने ये भी देखा बचपन में मुझे उस वक्त की याद आती है कि छोटे बच्चे नारे लगाया करते थे, उनके कुछ बड़े प्रिय नारे होते थे। तो कुछ उनके बारे में भी बताइए। उस समय के कौन-से प्रिय नारे थे और ये प्रभाव आप तक कैसे पहुँचे?

उ०: यह तो आपने बहुत ठीक कहा कि रेडियो का प्रश्न तो था ही नहीं। तब कहीं गाँव में बहुत बाद में **हिसार** में आने पर एक तरह से सबके साथ हम रेडियो सुनने के लिए गए थे। और अखबार गाँव में रहते हुए पढ़ा हो, मैं नहीं जानता। लेकिन पर्चे जरूर बँटते थे। और आंदोलन कैसे आता था. लेकिन बड़ी तेजी से आता था - कि जिले से, गाँव से आते थे (पर्चे)। और उस जमाने में बसें भी नहीं थीं। हमारे एक चाचा घोड़ी पर चढ़ कर जाया करते थे या बैल-टांगे पर। और कितने गाँव थे जो सड़कों से जुड़े हुए थे, बहुत कम थे। हमारा गाँव जुड़ा हुआ था। इसलिए वहाँ प्रभाव पहुँच जाता था सारे का सारा। लेकिन मुझे बहुत अच्छी तरह याद है कि जब यह **खिलाफत आंदोलन** शुरू हुआ था तो हमारे गाँव में मुसलमान भी थे। तो वे जलूस निकालते थे, जलसे होते थे। तो जलूस मुझे याद है यह गाते हुए जाते थे कि -"**कहती है अम्मा यह मोहम्मद अली की कि जान बेटा खिलाफत पे चढ़ाओ।**" यह बड़ा मशहूर गीत था उस जमाने का। कहती है अम्मा यह शौकत अली की यह मोहम्मद अली की कि जान बेटा खिलाफत पे दे दो। यह एक बड़ा प्रसिद्ध गीत था। और दूसरा यह-कि-"**नहीं रखनी नहीं रखनी यह.. सरकार नहीं रखनी।**" और एक और था।

प्र०: प्रभात फेरियों में कुछ?

उ०: हाँ, कि **डायर** को हमें दे दो। **डायर** ने गोली चलाई थी न। जलियांवाला बाग में तो उसका बहुत प्रभाव हुआ। तो सब चिल्लाते जाते थे कि **डायर** को हमें दे दो। वह गीत मुझे याद नहीं है आज। बड़ा प्रसिद्ध गीत है वह। तो इस तरह के बहुत से गीत थे।

प्र०: वैसे आपके बचपन में यह **झण्डा ऊँचा रहे हमारा..**

उ०: तब यह नहीं था। यह उसके थोड़े दिन बाद पहुँचा। यह 1930 में।

प्र०: और **वन्दे मातरम्**?

उ०: शुरू से वन्दे मातरम् था। जो नारा लगाते थे। अच्छा आपको आश्चर्य होगा **वन्दे मातरम्** और **अल्लाह-हो-अकबर** दोनों लगते थे क्योंकि खिलाफत वाले अल्लाहो अकबर का नारा लगाते थे उसमें वैमनस्य की बात नहीं थी और हम लोग **वन्दे मातरम्** का नारा लगाते थे। कभी-कभी बजरंगबली भी आ जाते थे। लेकिन उसमें ऐसा था न कि हम लोग हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न के बारे में इस दृष्टि से नहीं सोचते थे। वह बाद में सोचने की बात हुई थी। लेकिन मैं जो बता रहा था - एक बात पहले की मुसलमानों की।

मैं एक घटना बताना चाहता हूँ। उस समय गाँव में ऐसा था कि हिन्दू लोग अपना दूध सारा गाय भैंसों का, मुसलमानों को दे देते थे। मुसलमान लोग आते थे। उनकी बाल्टी में दूध ले जाते थे। पता नहीं कैसे यह शुरू हुई थी परिपाटी। तो ऐसा हुआ कि मेरा जो क्लास मेट था - मेरी कक्षा का पढ़ने वाला - वह बहुत देर से आया। दूध खत्म हो चुका था। वह गरीब लड़का था।

मेरे पास जब वह आया, मेरे घर के सामने मैंने कहा -"अरे सईद तुम देर से आए। क्या बात है?' कहने लगा -"अम्मी बीमार थीं। मैं आ नहीं पाया।" तो मेरा चूँकि दोस्त था वह, तो मैं अपनी माँ के पास गया -"सईद आया है, उसको दूध नहीं मिला।" दूध तो खत्म हो गया।"-"कुछ होगा?" बोली -"तुम्हारे पीने के लिए रखा है। वह तुम.. । मैंने कहा-"वह ही दे दो।" तो साहब मेरी माँ बहुत अच्छी थी। उनको लगा कि यह बहुत अच्छा काम किया है बेटे ने, कहा। तो वह दूध ले के चला गया। बात खत्म हो गई। लेकिन सिवैंया, एक रिवाज है कि सिवैंया बनाने के बाद मुसलमान लोग सब अपने घरों में और आस-पास दोस्तों में भेजते हैं। इस लड़के को भी इसकी माँ ने बना के दिया कि -"वहाँ दे आ।" तो इस लड़के ने सोचा कि जिससे हम दूध लाए थे, उसको दिया ही नहीं. । तो सबसे पहले वह कटोरा भरके हमारे घर आया। हमारे चचा बाहर खड़े हुए थे बोले-"क्या बात है?" कहने लगे- "मैं सवेरे दूध ले गया था। सिवैंया बनाई हैं, आपके लिए ले आया हूँ।"-'हम तेरी सिवैंया खाएँगे? तू मुसलमान है, कैसे खा सकते हैं? ' इतनी देर में मेरी माँ आ गई। मैं भी आ गया। तो मेरी माँ ने कहा कि -"बेटे क्या बात है? तो उन्होंने कहा कि-"तुम्हारी सिवैंया, सूखी सिवैंया हम ले लेते हैं। बनाई हुई सिवैंया हम नहीं खाएँगे।" अब यह सुनना था वह बालक बेचारा घबरा गया। इस घटना का

मेरे ऊपर बड़ा असर हुआ और मेरी जो प्रसिद्ध कहानी है, अधूरी कहानी है, इसी घटना को लेकर है। तो वह आप बात कह रहे थे बालपन का जो प्रभाव है। यह मेरे पूरे जीवन पर, पूरे साहित्य पर, पूरी मेरी सारी धारणाओं पर धीरे-धीरे गाँव से लेकर हिसार आने तक, परम वैष्णव, आर्यसमाजी, गाँधी जी-इन सारे उतार चढ़ाव में, बराबर रहा।

और मूल रूप में ये चीजें मेरे साहित्य में हैं। बाद में बदलीं। विकसित हुई, वह सब बाद की बात है। लेकिन बचपन इस तरह से हावी रहा। और बचपन की - उस जमाने की मेरी कहानियाँ, मैंने दो कहानियों का नाम लिया ये बहुत प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इसको सबने स्वीकार किया और हमारे मुस्लिम मित्र, उन्होंने भी इनको छापा बड़े उससे। तो यह कहानी यहाँ खत्म होती है बचपन की। किंतु बचपन के बाद और भी बहुत सी बातें निकलीं।

प्र०: हाँ, वह तो निकलेंगी। लेकिन एक बात बताइए कि एक संयुक्त परिवार और फिर एक छोटा-सा एक सामाजिक परिवेश, तो वहाँ व्यक्ति के संबंध जाति से धर्म से ऊपर उठकर कुछ रिश्तों की शक्ल ले लेते थे। जैसे महरी को भी बच्चे नाम से न बुलाकर वह कुछ ताई, चाची ..।

उ०: हाँ मैंने बताया कि मैं चाची कहता था उसको।

प्र०: और इसी तरह से जो दूसरे धर्म के लोग होते उनसे भी रिश्ते हो जाते थे। लेकिन बाद में जब आप प्रबुद्ध हुए उस समय के समाज में यह चीज नष्ट होने लगी। चेतना के स्तर पर, ज्ञान के स्तर पर, बुद्धि के स्तर पर जानकारी के स्तर पर आप और आपका परिवेश बहुत आगे बढ़ गया। लेकिन ये जो मधुर संबंध थे जो धर्म और जाति को भी ट्रासडेंट कर जाते थे, ये टूटने लगे थे। इसके बारे में आपने कभी कुछ सोचा या आपने साहित्य में कभी..।

उ०: जी हाँ। मैंने इस पर बहुत कुछ सोचा है और लिखा भी है और उसका एक विशेष कारण है कि यह जो राष्ट्रीय आन्दोलन जैसे-जैसे तेज होने लगा तो, **ब्रिटिश गवर्नमेंट** जो थी-हमारी गोरी सरकार उसने शुरू से ही **1857** से इस बात को समझ लिया था। इसका पुराना इतिहास जानना पड़ेगा कि' **57** में आप जानते हैं कि मुसलमांन बहुत विरोधी थे, तो ब्रिटिश गवर्नमेंट ने हिन्दुओं को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश की। लेकिन वह बहुत जल्दी समझ गए कि ये हमारे साथ नहीं आ सकते। क्योंकि ये बहुमत वाले लोग हैं और बड़े उदात्त भी हैं कई बातों में, लेकिन हमारे साथ नहीं आ सकते। तो उन्होंने फिर मुसलमानों का अजमत का वास्ता देकर के उनको अपने साथ मिलाने की कोशिश की।

और इतिहास में देखिए **सर सैयद अहमद खान, स्वामी दयानन्द** के बड़े परम मित्र थे और आना-जाना था। बड़ी तारीफ भी उन्होंने की है। वह फिर धीरे-धीरे कैसे मूवमेंट से अलग होते हुए उन्होंने मुसलमानों के लिए बहुत काम किया शिक्षा के क्षेत्र में, लेकिन राष्ट्रीयता के क्षेत्र में कैसे वह दूर हटते चले गए, इसकी एक

पूरी कहानी है। और इसीलिए मैंने अपनी आँखों से देखा उसी गाँव में कि **मोहर्रम** का जलूस निकला और नीम का पेड़ हमारी दूकान के आगे खड़ा हुआ है तो उसकी डाल से वह छूना चाह रहा था तो दोनों खड़े हो गए हैं कि यह डाल कटेगी और हिन्दू कह रहे हैं कि नहीं कटेगी।

प्र०: **ताजिया झुकेगा नहीं।**

उ०: झुकेगा नहीं, तो खैर, उस समय हमारे यहाँ जो पुलिस कप्तान था या कौन था जो आया था कलैक्टर, उसने एक रास्ता निकाला। वह बड़ा अजीब रास्ता था। उसने वहाँ से जो जमीन थी उसको थोड़ा छीला, खोद दिया गहरा कर दिया और गहरा करने के बाद ताजिया जो है, वह झुक कर, निकल गया। □
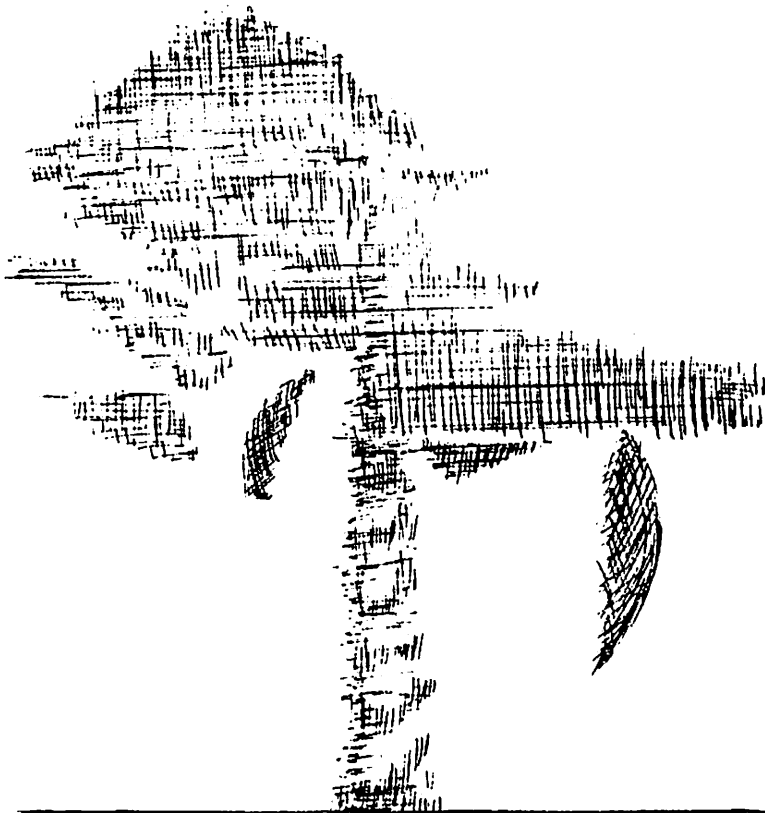
॥ हिन्दी साहित्य के हंस :
अमृत लाल नागर ॥

नागर जी ने अपने साहित्य सृजन में जिन्दगी से पूर्ण प्रवहमान कथानकों का जो कभी नहीं भुलाया जा सकने वाला संसार रचा है वह करोड़ों पाठकों के लिए विलक्षण अनुभवों का यादगार सफर बन चुका है।

व्यक्ति की श्रेष्ठता और रचनाकार की महानता के अनुपम उदाहरण हैं - नागर जी।

अनेक कालजयी औपन्यासिक कृतियों के लिए ही नहीं, अपनी आत्मीयता भरी जीवन शैली के लिए भी हरदम स्मरण रहेंगे आप।

अमृत लाल नागर जी की यह आकाशवाणी - आत्मकथा चौदह से सोलह जुलाई तक उन्नीस सौ छियासी ईस्वी में लखनऊ में रिकॉर्ड की गयी थी।

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कथाकार श्री ठाकुर प्रसाद सिंह एवं आकाशवाणी के पूर्व निदेशक तथा वरिष्ठ प्रसारण कर्मी श्री गोपाल दास ने नागर जी से बातचीत की। उसी रिकॉर्डिंग के कुछेक मार्मिक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

॥ हिन्दी साहित्य के हंस : अमृत लाल नागर॥

प्र०: नागर जी, आपकी इस लम्बी साहित्य-यात्रा के बारे में और आपने साहित्य सृजन किया, उसके पीछे क्या इतिहास था, क्या आपका सोच था, क्या आपकी धारणाएँ थीं, विश्वास थे, सिद्धान्त थे, आस्थाएँ थीं, आकांक्षाएँ थीं, आप क्या चाहते थे? हम यह सब जानना चाहेंगे। आपने कहा है कि वादों के दुराग्रह से ग्रसित नहीं हैं, शायद आप ही के शब्द हैं। आपने शिल्प के संबंध में भी बहुत-सी बातें कही हैं। साहित्य-सृजन के बारे में भी बहुत कुछ कहा है। व्यक्ति, समाज और प्रतिबद्धता के बारे में भी बहुत कुछ कहा है। आपके जो समकालीन बड़े लेखक हुए हैं, उनका जो आप पर प्रभाव रहा है, उसके बारे में भी आपने बहुत कुछ कहा है। मैं चाहूँगा, आप पूरा इतिहास बताएँ.. ।

उ०: मैं सृजन के आरंभ होने से पहले सृजनकार का आरम्भ मानता हूँ। उस समय नए चलन के कपड़े और पहनावे भी आ गए थे। पुराने चलन के भी बरकरार थे। अपनी जगह पर यथास्थिति। वैसे ही जीवन के मूल्य-मान्यताओं में भी मेरा घर, जहाँ मैंने ज्ञान पाया, मेरे पितामह-वैष्णव यानी रामभक्त, वैसे कुलसंस्था के शैव भी। तो राम और शिव दोनों के भक्त थे। हनुमान जी के भक्त थे। तो ये संस्कार मन के। उसके साथ ही साथ हिन्दू साहूकार्या-पूरा बैंक का काम था। अत्यन्त मध्यवित्त का साधारण व्यक्ति होते हुए भी मुझे आभिजात्य कुल के हिन्दू और मुसलमान, दोनों को ही देखने का मौका मिला। दोनों की महफिलें, दोनों का आना-जाना, दोनों के आदाब-अल्फाज भी मुझे सिखाए गए। और बाकायदा शिष्टाचार, जो हिन्दुओं के ढंग का था, वह भी सिखाया गया। साधारण उपयोग की दोनों चीजें। मेरे पितामह, बैंक से जुड़े थे। उस गदर के बाद, रईसों के मन में अंग्रेजी बैंक में कुछ जमा करने की हिम्मत भी नहीं होती थी। तो इस प्रकार के संस्कार मुझे मिले। घर से भी और घर के बाहर से। वह सड़क जो है.. चलती-फिरती-गालियाँ भी वहाँ सुनीं। बुलबुल-बटेर की लड़ाइयाँ भी देखीं। नीचे तरकारी वालों की दूकानें थीं, ऐसे मजेदार दृश्य देखने को मिलें...

होता क्या था, बचपन में एक ही अभाव था सबसे बड़ा। मेरा कष्ट - कोई साथी नहीं था। घर में बन्द शाम को ६ बजे के करीब एक नौकर आएगा। सामने कम्पनी बाग ले जाएगा। और मेरा एक साथी बिल्कुल पड़ोस से, बाबू हरिकृष्ण धवन उस समय बहुत प्रसिद्ध थे, लखनऊ के नेता भी रहे हैं, एडवोकेट थे - उनका बेटा प्रताप कृष्ण धवन, वह दो घंटे तक संग रहेगा और तब भी दादी बैठकर के बारीक जाली से देखती थी - सामने वाले पार्क में ही तो खेल रहा है? और कहीं न चला जाए। तो साथी का अभाव इन दृश्यों की कल्पना कराता था। वह बच्चा (तो) बक-बक करेगा अकेले में।

पर यदि मैं लेखन में न पड़ता तो शायद अच्छा **एक्टर** बनता। क्योंकि उनकी बोली नकल करता था। अकेले में बैठा हुआ तो गालियाँ भी इस तरह से सहज भाव से कह देता था। एक दिन पिता जी ने सुन लिया। उन्होंने थप्पड़ मारा। अच्छा, तब से यह अनुमान हुआ कि यह शब्द गाली है, यह न बोलो यह बोलो। अच्छा इस तरह से क्रमशः मेरे साथ-साथ में परिवेश चल रहा था आन्दोलन का। पहला साथी मेरा बना -छापे का अक्षर। यदाकदा दूसरे तीसरे चौथे मिल जाने वाले कुछ दोस्त। स्कूल अभी बाद बहुत बाद है। तो मेरी सारी दोस्ती इक्ट्ठा हुई केवल छापे से। एक **सरस्वती** आती थी, और एक हमारे पितामह हमारी माँ के लिए **गृहलक्ष्मी** लिया करते थे। तो ये दो पत्रिकाएँ आती हैं। मुझे कविताएँ शुरू में बहुत याद थीं। अकेला बैठा क्या करता हूँ तो क्रमशः बुद्धि का विकास ही छापे के अक्षर से बेहोशी में हुआ।

पितामह की बड़ी आकांक्षा थी 'यह' कुछ बने और वह तो जज बनाना चाहते थे। मैं ज्यादा पढ़-लिख न सका बाद में। लेकिन एक मन का अभाव रहा है जो बचपन में बड़े लोग महत्वाकांक्षाएँ जगाते हैं, वह कभी-कभी घातक परिणामकारी भी होती हैं। और कभी उनसे संघर्ष भी जागृत होता है। सौभाग्य से मुझसे संघर्ष बना। अतः संघर्ष मेरा उदय हुआ। **साइमन कमीशन** का यहाँ से जलूस निकल रहा था। मेरे ख्याल से **सन्' २६** की बात है। अच्छा, उस जलूस में इधर से-यहाँ पर रेडियो स्टेशन तो था नहीं, तो मेरा अपना अनुमान है यहाँ खाली मैदान ही था। तो इधर से इतना बड़ा जलूस था और कानपुर कॉलेज इस चौराहे पर दूसरा **जवाहर लाल** रोड सड़क तक। आखिर चलने लगी - पीछे की भीड़ आगे बढ़ती आती, आगे की भीड़ पीछे लाठियों के कारण रपटती जा रही है। विश्वास मानिए, एक 12-13 साल का लड़का जैसे जमीन से उठ गया। चप्पल-वप्पल तो जाने दो भई, यूँ घूमा भीड़ में ही, और चक्करघिन्नी काट के, यों गली में आ गया। मेरा अपना अनुमान यह है कि अनुभव, अनुभूति और अभिव्यक्ति का क्षण एक पकाव सा आ गया और सृजन फूट पड़ा। तो संक्षेप में इतिहास सृजनकार का और सृजन के क्षण का यह मैं इतना ही निवेदन कर सकता हूँ।

प्र०: यह तो यात्रा का पहला चरण था न। उसके बाद के चरण सुनाइए।

उ०: अच्छा - अच्छा। दूसरा आता है फिर क्रमशः जैसे कहा मैंने हो सकता है कि मैं एक्टर भी बन जाता, पर न बना। उसका भी एक कारण था। आरम्भ हमारा, यदि मैं अपना दकियानूस शब्द इस्तेमाल करूँ तो विधि का विधान ही मान लीजिए उसे। **आचार्य श्याम सुन्दर दास** उन दिनों **कालीचरण स्कूल** के हैडमास्टर थे। वह और हमारे बाप कम्पनी बाग सवेरे जाते थे। बाद में छापे में अक्षरों में उनका नाम दिखाई दिया। उनको हम बाबा बाबा कहते हैं। अच्छा फिर एक और सौभाग्य (से) थे **पंडित माधव शुक्ल**। वह एक समय, इलाहाबाद बैंक में ही काम करते थे, लखनऊ में भी काम करते थे। तो उनके आने से मेरे पिता उनको भैया कहते थे। तो उनके आने से यहाँ एक **हिन्दू रिलीजन क्लब** बना। मैंने आरम्भ में उनके भी रिहर्सल देखे थे। एक

बड़ा मोटा-सा उस वक्त बहुत ढीली बाँह का कुर्ता (था), बाँहें उनकी बहुत लम्बी थीं **आजानुबाहु** जिसको कह सकते हैं। जलियाँवाला बाग से लौटे थे। और कुर्ते की जेब में वहाँ की खून से सनी हुई मिट्टी भर लाए थे। उनकी बातें अब कुछ नहीं याद, पर मन में वह गूँज अब भी बाकी है। अब तक बाकी है। अच्छा, एक चित्र भी उन्होंने रंगीन दिया था। काल्पनिक चित्र-जलियाँवाला बाग का। बाद में एक अंग्रेज आने वाले थे और हमारे पितामह सरकारी आदमी, तो वह उखड़वा दिया गया। तो उसका मुझे एक धक्का था कहीं मन में।

आप देखिए, सामाजिक चेतना, तात्कालिक राजनीतिक चेतना, मेरे मन के अपने अभाव, मेरे मन की कल्पनाएँ, मेरी सारी आवश्यकता मुझे **लेखक** बना गई, मेरा क्या इसमें? (हँसी)। दूसरा चरण तब आरम्भ होता है जबकि मैं विधिवत् लेखन क्रिया के प्रति अधिक सहज हो जाता हूँ **एक्टर** इसीलिए नहीं बन सका क्योंकि मेरे साथ में आरम्भ में ही छापे के अक्षरों का प्रभाव पड़ चुका था। इसीलिए स्वाभाविक रूप से लेखक हो गया। आप विश्वास मानेंगे, मेरा पागलपन? आज तक मैं लेखक से बड़ा अल्ला मियाँ को भी नहीं मानता यानी राम का पूरा भक्त होते हुए भी, एक समय में लेखक को सर्वोच्च स्थान देता था।

प्र०: यह पागलपन तो वरदान रहा आपके लिए।

उ०: अच्छा, वह पागलपन ही, वह हो क्या गया, उसी बहाने पढ़ाई आरम्भ हुई - अधिक पढ़ाई। मेरे मित्र **ज्ञानचंद जैन** हैं और पाँचवें दर्जे से हमारे साथ ही। हमारी दोस्ती का नाता ही यही है पुस्तकालय का। स्कूल के सहपाठी से अधिक, वह पुस्तकालयों का सहपाठी था। हम लोगों ने खूब पढ़ा। उस जमाने में कोई हद नहीं। भूख है पढ़ने की, एक चाह उत्पन्न हुई। तो अभी जागी हुई है। लेकिन क्रमशः कविता तो छूट गई।

कविता में एक दिक्कत और है, वह दिक्कत थी कि मैं गणित में बहुत ही कच्चा था। सब विषयों में इज्जत पाता था, गणित में मटियामेट हो जाता था। अच्छा, वही काव्य में था, मात्राएँ गिनो। तो कौन गिने? इतने झंझट। मन का विकास हो रहा है। विचार अधिक प्रसार (ले) रहे, फैल रहे हैं। स्वाभाविक रूप से ग्रन्थ का सहारा ले लिया और एक बार वह विधा आ जाने पर फिर क्रमशः उसी में रम गये। अब तीसरे चरण की बात आप पूछें तो मैं बताऊँ।

प्र०: पंडित जी ऐसा है कि अमेरिकन लेखक एडगर एलन पो.. । ऐसा विचार था कि जो लेखक की या किसी भी आदमी की जो बेसिक इमेजेज होती हैं, प्रतीक होते हैं आदि जो छवियाँ होती हैं, वे जीवनभर उसके साथ रहती हैं, छूटती नहीं हैं कभी उससे।

उ०: ठीक बात है।

प्र०: तो आपके लेखन में बराबर, जो **चौक** का वातावरण आया है, क्या कुछ यह भी उसके मूल में है कि आपके जो आदि उत्स हैं, वे स्रोत वहीं हैं?

उ०: आपकी एक बात में दो बातें हैं। एक तो मेरे लिए सहज था - **चौक**। जो जो बोली-बानियाँ अपनी बेहोशी में मैं नकल करता था, अपने मन को बहलाने के लिए, उनमें अपनी बात की अभिव्यक्ति करना यानी एक अच्छी बौद्धिक बात की, जो क्रमशः बाद में आई। अभी तो रॉ है, कच्चा, माल है, वह क्रमशः बन रहा है। तो वह जो बौद्धिक बात है, वह एक बड़ी बात चलते-फिरते करैक्टर के सहारे, कहते। आरम्भ में कहानियाँ ही चलीं। जब कविता छूटी तो कहानियाँ चलीं। और कहानियों में दो चीजें मुझे पहले तो मिलीं एक यथार्थ घटना उसके आवेश में लिख गया। जैसे साइमन कमीशन के जलूस में लिख गया था आवेश में लिख गया। अच्छा फिर चलिए काल्पनिक स्थिति! अब लेखक हम बन गए हैं। तो रोज पेट भरना है उस लेखकत्व का । तो उसमें **चण्डी प्रसाद हृदयेश** और **जयशंकर प्रसाद** की भाषा यह हमारे ऊपर चढ़ गयी, हावी हो गयी। **पंडित रूप नारायण पाण्डेय** बहुत ही बढ़िया आदमी। यानी दो आदमी हमने देखे हैं साहित्यिक पत्रकार वह कहानी लेखक, यह कवि। रूप नारायण पाण्डेय और शुक्लचंद सहाय। तन्मय अपने काम में और दूसरों की सहायता बढ़-चढ़कर करने वाले। कहानी ले के गए तो हमसे बोले कि "भैया तुम बहुत विद्वान हो गए हो। तुम्हारी कहानियों के नीचे फुटनोट लगाने पड़ेंगे।" तो हम चौंक कर देखने लगे उनको। और फिर उन्होंने हमको लताड़ा। और सच मानिए कि मेरे बनावट का भूत उतारने के लिए मैं उस महापुरुष के प्रति आज तक इस क्षण तक कृतज्ञ हूँ और जितना जीऊँगा, रहूँगा सहज भाषा दी।

प्र०: **लखनऊ** में हिन्दी के जो लेखक आपके सामने पहले पहल आए, बाबू श्याम सुन्दर दास, माधव शुक्ल ये दो थे जिनके प्रभाव से आपने हिन्दी की ओर लिखना प्रारम्भ किया। ये दोनों ही विशेष आदर्शों से प्रभावित थे।

उ०: यह बाद में हमको पता लगा न।

प्र०: बाबू श्याम सुन्दर दास का तो विस्तृत चित्त था और माधव जी के साथ एक राष्ट्रीय ओज था। तो एक ओर तो आपका मन बड़ा विस्तृत है और एक ओर है उसके अन्दर जो स्पिरिट है। ये दो चीजें तो मूल रूप से आपने वहीं से ग्रहण की हैं, ऐसा लगता है। लेकिन उस समय आप **शरत्** से भी मिलते हैं...'

उ०: जी हाँ।

प्र०: और **प्रेमचन्द** ने भी आपको लिखा है कि मुझे ऐसी कहानियाँ नहीं चाहिए, जैसी आपने लिखी हैं, मुझे यथार्थवादी कहानियाँ चाहिए।

उ०: जी हाँ।

प्र०: तो यह आपकी साहित्य-यात्रा का जो..

उ०: **प्रेमचन्द** की बात है **सन्' 34** की, तब मैं प्रेमचन्द से मिल चुका हूँ लखनऊ में ही। उन्नतीस में-वे जब **माधुरी** के संपादक थे। ठीक उसी तरह, जैसे आज के नौजवान फिल्म स्टारों के फैन्स हैं, छापे में छपे हुए चित्र वाले व्यक्ति, छापे के नाम, मेरे लिए जादू थे। अब मन का भोलापन कह लीजिए दीवानापन कह लीजिए, कुछ भी कह लीजिए, मगर वह था। तो यह तीसरे चरण में।प्रेमचन्द से मिल चुका हूँ यहाँ मैं। लेकिन तब खुद कहा - यह मैं लिखना चाहता हूँ। "लिखो-लिखो, अच्छा है। मगर पढ़ो। लिखने से पहले पढ़ो।" यह उनकी बात। **शरत् बाबू** ने यह कहा कि "जो लिखो, अनुभव से लिखो।"

प्र०: कल्पना को काम में मत लाओ?

उ०: कल्पना को काम में मत लाओ। अच्छा, उनसे एक बार बाद में हमने प्रश्न किया था, उनका जो चार खंडों का उपन्यास है...।

प्र०: श्रीकान्त... ?

उ०: श्रीकान्त, तो तब वह चलने लगे, तो एकाएक मूड में आ गए। कहने लगे – महीने-एक दो महीने बाद मरने वाले हैं तो हमको अपने बंगले से लेकर के हाथ पकड़ के ले गए नीचे ढाल पर उतर के। एक नाला बहता है पानी का। वहाँ तक ले गए। थोड़ी देर खड़े रहे। बाँह पकड़े खड़े हैं। बोले – "नदी में जब बाढ़ आती है तो मेरा बंगला डूब जाता है" और ऐसे शान से कह रहे हैं कि जैसे बड़ी बात हो रही हो। तो शरत् बाबू से कभी किसी प्रसंग में हमने पूछा -"आपने जो इन्द्रनाथ का वर्णन किया, वह यहाँ का? बोले - "नहीं।" उसी प्रसंग में, उनके ही शब्दों में – "बारह आना भर सच, चार आना भर कड़ियों को जोड़ने के लिए - कल्पना। यह बारह आना और चार आना का उन्होंने इस्तेमाल किया।

प्र०: अनुपात रखा था।

उ०: तो अनुभव की बात है। अनुभव, लेकिन कल्पना को नकारते नहीं हैं। कल्पना, को वह आवश्यक मानते हैं कड़ियाँ जोड़ने के लिए, उपन्यास लिखने में। मैं समझता हूँ कि शायद आज तक मेरे उपन्यास लिखने में यह ही तरकीब कहीं न कहीं छिपी हुई है उनकी।

प्र०: यह तो लेखन की बात हुई। लेकिन आपके सोच को कितना प्रभावित किया

उ०: शरत् बाबू ने मुझे बौद्धिक रूप से अधिक प्रभावित नहीं किया।

प्र०: किसने किया, प्रसाद ने किया?

उ०: प्रसाद ने। मानता हूँ जरूर। उनको पढ़ा है। उनका **चन्द्रगुप्त** पहले..। उस वक्त प्रेमचन्द ने अपने समय की इतनी बढ़िया तस्वीर दी कि मन खींचने लगी। अच्छा, लेकिन है क्या उसमें एक

सबक था – 'जो लिखो अनुभव से लिखो।' एक समाज जिसको मैं दूर से देखता हूँ, तो उसके प्रति यदि अपनी सहानुभूति भी व्यक्त करता हूँ तो वह एक प्रकार का मेरा अहम् आरोपण मानते हैं। अच्छा, कलाकार का जब तक उसमें तादात्म्य न हो जाए, तब तक बात बनती ही नहीं है।

प्र०: नागर जी, आपने शुरू में यह कहा था कि लिखना-पढ़ना आपने पहले आनन्द से शुरू किया था। एक रोमांच से शुरू किया, एक आकर्षण था छापे के अक्षरों में आपको। और धीरे-धीरे आप एक उत्तरदायित्व की ओर बढ़े, फिर लेखन में आपने उत्तरदायित्व का भी अनुभव करना शुरू कर दिया। इसमें शायद प्रेमचन्द की भी खासी भूमिका रही होगी और समय की भी रही होगी, समाज की भी रही होगी। क्योंकि आपने लखनऊ में प्रेमचन्द से भेंट की '35 में और आपको स्मरण होगा कि 36' में अखिल भारतीय **प्रगतिशील लेखक संघ** का **अधिवेशन** संस्थापना अधिवेशन लखनऊ में हुआ उसकी अध्यक्षता प्रेमचन्द जी ने की। उसके बाद जो हिन्दी लेखक हैं, लेखन है खासतौर से, उस पर वामपंथी सोच बढ़ने लगा। प्रेमचन्द जी ने उसका नेतृत्व किया, कुछ हद तक। लेकिन बहुत कुछ वह परिस्थितियों के चलते हुआ। इस देश में समाजवादी पार्टी की स्थापना, समाजवाद की तरफ रुझान, स्वयं **जवाहरलाल जी** का मन समाजवाद की तरफ जा रहा था ये सब सारी बातें पृष्ठभूमि में रही होंगी। इसको लेते हुए आपके मन में लिखने के प्रति, रचना के प्रति कैसा आग्रह, कैसा विश्वास जनमा, इस पर भी कुछ कहेंगे?

उ०: ठाकुर प्रसाद जी आपने बहुत अच्छा सवाल किया, लेकिन इस सवाल के अन्दर मेरे लिए कई जवाब-दर-जवाब आ जाते हैं, क्योंकि (इसमें) सवाल-दर-सवाल हैं। हिन्दी में जो नई लहर शुरू हुई, जलियांवाला बाग उधर **19** में और रूस की क्रांति इधर "ऐ विप्लव के **दीप** तुझे बुलाता कृषक अधीर - - निरालावाद कहकर इन्हें, **गणेश शंकर विद्यार्थी** लिख रहे हैं, **हरिऔध** का हमें याद है, एक है "क्या कहें बात अमीरों की, बेकसों का गला दबा देना बाएं हाथ का काम है.. यानी इस तरह की चीजें सब विद्यमान हैं। अच्छा "जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं नरपशु निरा है... और मृतक समान है" देखिए साहित्य की इस चेतना में छापे के अक्षरों में मिले मेरे सबसे अच्छे मित्र गुरु और मार्गदर्शक! तो इनमें क्रमशः यह चेतना आरम्भ हो चुकी है। अच्छा और गरमी है, उम्र की गरमी। उम्र की गरमी में गर्म बात उम्दा लगती है। पहले मैंने कहा था कि मैं गणित से बहुत घबराता हूँ। लेकिन दूसरी तरफ संयोग की बात देखिए, मेरे दिमाग की बनावट में, यानी रेडियो टॉक भी लिखता हूँ तो पहले एक दो तीन चार पाँच प्वाइंट लिख लेता हूँ क्रमशः तस्वीर पूरी आए। या कोई भी विषय उठाऊँगा तो उसको क्रमशः दूँगा। आजकल अपने नए उपन्यास के लिए बीसवीं सदी के प्रत्येक दशक का जो मनोविकास है मध्यवर्गीय, इसका हिसाब लगा रहा हूँ।

मैं आता हूँ सन् बाईस के बाद से, आपको **गाँधी आन्दोलन** में वापिस लेता हूँ। अच्छा, समझ लीजिए हम नौ-दस बरस के हैं, लेकिन समय का प्रभाव कैसे पड़ रहा है। अच्छा गाँधी आन्दोलन चलते हैं हिन्दू-मुस्लिम दंगे उस वक्त तक लखनऊ में हुए नहीं। अच्छा हिन्दू-मुस्लिम दंगे शुरू

होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम दंगे के साथ में दो एक दूसरी चीजें आप देखिए यानी की जिसके ऊपर कम ध्यान जाता है जब हम क्रांतिकारियों की बात करते हैं तो बंगाल ही का एक ध्यान करते हैं। दूसरा गढ़ **उत्तर प्रदेश** हुआ उस वक्त **रामप्रसाद बिस्मिल**, **चन्द्रशेखर आजाद**, **अशफाकउल्लाह** और **रोशन सिंह**, ये सब जो एक पूरा गैंग तैयार हुआ था, इन्होंने हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन किस्म की कुछ चीज बनाई थी जो बाद में चन्द्रशेखर आजाद ने बड़ा बनाया। अच्छा, **काकोरी** में डकैती केस हुआ था। काकोरी केस का हमारे ऊपर जो मानसिक प्रभाव पड़ा, वह निश्चित रूप से मेरे अन्दर जगा रहा है - विद्रोह, कि हाँ इस गुलामी से हटना है। क्योंकि काकोरी केस तो एक बड़ी बात थी। उनकी नीति थी कि हम जनता को नहीं छेड़ेंगे, जनता को डराएंगे नहीं, लूटेंगे नहीं, केवल गार्डरूम में जो स्टेशन-स्टेशन से पैसा आया है वह **सरकारी खजाना** ही लूटना है। तो यह चीज जो थी एक अजीब न्यायप्रियता भी भर देती है हमारे मन में कि हाँ बिल्कुल न्याययुक्त है, लड़ना चाहिए। देखिए बचपन का मन तैयार होता है।

अच्छा, फिर यह **साइमन कमीशन** आया। साइमन कमीशन ने हमको और सक्रिय बना दिया। क्योंकि वहाँ से रचना स्फुटित हुई और क्रमशः सक्रिय बना दिया। बौद्धिक रूप से भी, चेतन अधिक बना दिया। चीजें अधिक पढ़ रहे हैं हम। और उनको आत्मसात कर रहे हैं। सौभाग्य यह है कि उस समय हमारे साथ में जो कुछ मित्र भी हैं, वे इसी प्रकार के विचार रखते हैं। नए हैं तो गलियों में बैठे हैं, तो बजाए इसके कि **कनकौआ** लड़ा रहे हैं, लट्टू नचाएँ या नई उम्र की इश्कबाजी की बातें करने की गप्पें हाँकने के हम लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट होता है - इनमें। इन बातों में। अच्छा मुझपर क्या होता है कि क्रमशः उसका जो बौद्धिक विकास सृजनात्मक कलाकार में अभी बेहोशी में है, वह होश में आ जाता है। होश में आता है और जब आप अंग्रेजी साहित्य और अधिक पढ़ने लगते हैं तो वह स्वातन्त्र्य चेतना भी विकसित होने लगती है।

प्र०: इसी जगह प्रेमचन्द आते हैं।

उ०: ऐसी जगह **प्रेमचन्द** आते हैं। अच्छा प्रेमचन्द क्या, मैं आपको बताऊँ मुझे शिल्पी के रूप में तो **शरत्** बहुत अच्छे लगते हैं। उस जमाने में बहुत ही अच्छे लगे, जादूगर। अच्छा, जादू न होता तो उनसे हम इतनी दूर मिलने क्यों आते। लेकिन जो कैरक्टर्स थे। ये पिसनहारी का कुआँ, राजा हरदौल... ऐसी कुछ कहानियाँ हैं।

प्र०: हाँ, प्रेचन्द जी की रचना है।

उ०: अच्छा यह आत्माराम टें-टें तू बोलता है, सबसे अधिक तू बोलता है। इनमें बहुत अपनापन जरूर मिलता था। यह लगता है कि ये करेक्टर्स हमारे गली-मोहल्लों के आसपास कहीं न कहीं, हल्की झलक दे जाते हैं। तो बहुत अपने लगते थे।

प्र०: नागर जी, लेकिन ठाकुर प्रसाद सिंह जी का जो प्रश्न था, वह **प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन** का जो आप पर प्रभाव पड़ा?

उ०: हाँ, जब तक यह भूमिका नहीं जमा लेता, तब तक प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन का, उसका मतलब अप्रासंगिक हो जाता है। तो यह सब स्वाभाविक रूप से (प्रभाव) पड़ रहा है। दिमाग के ऊपर जोश है। अखबार पढ़ते ही हैं। अखबार भले यहाँ से नहीं निकले। कुल **पायनियर** का पता था। तब वह पायनियर भी इलाहाबाद में ही था, लखनऊ में नहीं था तो मेरे सामने आया था बाद में। अच्छा, **"आनन्द"** एक अखबार यहाँ से दैनिक भी निकलने लगा। साप्ताहिक तो निकलता ही था, वह दैनिक आनंद हमारे चौक से ही निकलता था शाम को दो-ढाई बजे तक छपता था। लेकिन ढाई बजे हॉकर "घमासान की खबर आ गई" सुनाते हुए कुछ अवधि में आकर्षित करते...।

आन्दोलन का युग है। खबरों के प्रति, अखबारों के प्रति जो चाव है, वह मुझमें और हमारे समाज में भी आया। और इसलिए साथी-संगी भी इस प्रकार के मिल जाते हैं, जो बढ़ रहे हैं क्रमशः।

बढ़ते हुए जब **प्रगतिशील लेखक संघ** के अधिवेशन में गए हैं तो बातें सुनीं। बातें जो सुनीं उनके लिए एक मानसिक पृष्ठभूमि तैयार है पहले से। साहित्य में **सनेही थे**, **हरिऔध थे**, **गणेश शंकर विद्यार्थी** थे, **निराला** थे, इन लोगों को अधिक देखा नहीं है मगर निराला को देखा। निराला से हम खूब मिलते थे और उनका प्रभाव तो बचपन में है ही। वह उभरता है।

प्र०: तब तक निराला जी लखनऊ में नहीं आए थे?

उ०: नहीं लखनऊ में आ चुके थे - 1929 में। पहले आए - **मातादीन शुक्ल** के यहाँ ठहरे थे - मातादीन शुक्ल के तालाब में। तो वहाँ पं० रूपनारायण पाण्डेय से पत्र लेकर निराला जी के पास पहली बार गये थे। तो निराला जी से '35-'36 तक तो हम काफी मिल चुके हैं। निराला जी हमारे घर आने लगे हैं।

प्र०: तो **प्रगतिशील लेखक संघ** के अधिवेशन में कैसा लगा आपको?

उ०: प्रगतिशील अधिवेशन में हिन्दी का साहित्यिक तो मुझे एक ही ख्याल आता है-**जैनेन्द्र कुमार** थे जो शायद **प्रेमचन्द** के कारण आए थे। और तो कोई नहीं। लेकिन मैं जरूर गया था। मैं लालच से गया था - सच्ची बात है। लालच यह था कि **प्रेमचन्द** ने यह पत्र जो लिखा था **" मैं तुमसे रियलिस्टिक कहानियाँ चाहता हूँ"** यह बात चुभ गयी थी। लेकिन **शरत्** की **"जो लिखो, वह अनुभव से लिखो"** यह बात भी कहीं चुभ गयी थी। तो और थोड़ा-सा इसके बारे में खुलासा करने के लिए। लेकिन वह तो मौका मिला नहीं। पर हाँ, ये ही जो बातें सुनीं, इन्होंने कहीं प्रभावित किया।

'46 तक बम्बई से हम लौट आए हैं। हमारे कुछ साथी भी थे, उन्होंने हमसे कहा - "नागर जी, एक **इप्टा** यहाँ भी शुरू कीजिए। हाँ, फिर इस तरह शुरू हुई। इप्टा में एक **प्रेमचन्द** की कहानी **ईदगाह** उसका एडप्टेशन किया **रजिया सज्जाद ज़हीर** ने। फिर भी हमने बाबू लाल से और रस्तोगी से कहा - 'भैया तुम परमीशन मँगाए लेओ।" तो परमीशन भी आ गई। अब हम बिल्कुल तैयार। उसी **एफ०आर०एम०क्लब में** जहाँ प्रगतिशील लेखक संघ का वह (अधिवेशन) हुआ। वहीं पे इप्टा लखनऊ की इप्टा जागृत हो गई। हम लगे हुए हैं उसमें। और भीड़ आ गई। हॉल छोटा है। ऑडियन्स आने लगे। रात के साढे सात बजे हमारे पास ऑर्डर आता है सरकारी ऑर्डर्स कि-स्टेज न हो। तो मैंने कहा कि अब तो ईश्वर सामने है हमारे खुदा है, बैठा हुआ है हॉल में इसको नाराज नहीं करूँगा। और हमने किया। मुकद्दमा चला। रजिया सज्जाद जहीर, मुझ पर, बाबूलाल वर्मा और गोकुलचन्द रस्तोगी जो व्यवस्थापक थे, उनके ऊपर चला मुकद्दमा। अच्छा, एक पुस्तक है **हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त** की। उसमें ड्रैमेटिक परफोर्मेंस एक्ट की हमको पूरी कथा, आदिम कथा पढ़ने को मिल गई। बड़ी रोचक लगी, प्रासंगिक भी लगी।

अपने वकील को हमने कहा -"जाकर के आप देखिए, दृष्टि में आपकी आएगा।" उन्होंने कहा-" यह तो बहुत अच्छा है" और तुरन्त उन्होंने अपील की कि सैशन्स कोर्ट वगैरह इस पर तो यह मुकद्दमा नहीं कर सकता। यह तो स्वतंत्रता के बाद फ्रीडम ऑफ स्पीच तो हमने संवैधानिक दे रखी है। इसलिए इसका फैसला हाइकोर्ट करेगा। तो हाइकोर्ट में गया वह। हाइकोर्ट में जस्टिस **आनन्द नारायण मुल्ला**। उनकी अदालत में गया। और दो मुजरिम हैं **अमृत लाल नागर** और **रजिया सज्जाद ज़हीर**, अब आप कल्पना कर सकते हैं।

प्र०: एक ऐतिहासिक काम किया आपने एक महत्वपूर्ण काम यह हो गया। पता लग गया लोगों को कि स्थिति क्या है। लेकिन उसमें शायद जो आपकी प्रगतिशील लेखक संघ की उदार नीतियाँ थीं पार्टी की, कम्युनिस्ट पार्टी की, उस समय थोड़ी उदार हो गयी थीं।

उ०: यह तो भैया डर के धक्का लगाया।

प्र०: जब राजदेव का प्रभाव बढ़ा पार्टी पर?

उ०: हाँ, उसके बाद से।

प्र०: इतना बड़ा लेखकों का जो समुदाय जुटा था इस आन्दोलन में, वह समाप्त हो गया?

उ०: वह बिखर गया। **स्ट्रिक्ट मार्क्सवादी** ही **प्रगतिशील लेखक** है, यह जब आ गया तो हम कहाँ?

प्र०: जैसा आप अक्सर कहते हैं कि दुःख जो है, आदमी को माँजता है...

उ०: माँजता है।

प्र०: और दु:ख शक्ति भी देता है...

उ०: वह शक्ति भी देता है।

प्र०: तो आजादी से पहले के जो लेखक थे, जो संघर्ष काल के लेखक थे, दु:ख में लिखते थे वे, लड़ाई में लिखते थे। आजादी के बाद का लेखक स्वतंत्र हो गया, तो बिखर गया है ऐसा लगता है। और आप मुख्यत: चूँकि '52 से अपनी मेजर राइटिंग मानते हैं, प्रमुख लेखन का कुछ विश्वास खंडित होने लगा...। '52 से '86 तक एक बड़ी लम्बी यात्रा है - विकास की खंडित यात्रा है यह आपका सबसे बड़ा पीरियड है उसमें आपने आस्था पाले रखी, अपने ही नहीं पूरे लेखन के पूरे पाठक में आस्था, यह बड़ा भारी काम था। इसको आपने कैसे अनुभव किया?

उ०: देखो बंधु, क्या होता है कि '47 का– आजादी का दिन है। पहली बार सात बरस के बाद बम्बई में ब्लैक आउट खत्म होगा और खूब रोशनी होगी। हम और **नरेन्द्र शर्मा** रातभर बम्बई की सड़कों पर बावले से घूमते रहे। उस दिन ऐसे जोश में थे। तीसरे दिन से रंग गायब है। जो जोश था वह रंग बिल्कुल बिखर रहा है और तब तक हमारा मन पक चुका है कि अब हम फिल्म में बालू पर लकीरें नहीं खींचेंगे। अब जाके काम करेंगे।

और आने के बाद, जबकि आप कहते हैं कि बहुत से लेखकों का संघर्ष समाप्त हो गया, आजादी के बाद मेरा संघर्ष आरम्भ हुआ।

प्र०: हूँ, यही है टर्निंग प्वाइंट।

उ०: आरम्भ क्या हुआ, आरम्भ तो हो चुका। गहराया है। अच्छा ठीक है थोड़ी-सी पूँजी है जो वह जमा कर लाई है। लेकिन देती नहीं। कौड़ी भी मुझकों नहीं देती। आगे बच्चे हैं, लड़कियाँ हैं अचला की शादी होने को है। अच्छा और सही बात है कि इस क्षण तक मेरा रोम-रोम पिसता गया। इतना अधिक है यह सब। हम लोगों ने हाथ से बरतन भी माँजे हैं, झाड़ू भी लगाई है, कपड़े भी धोए हैं।

प्र०: बड़ा जूझी हैं आपके साथ वह - खूब जूझीं। बहुत जूझीं।

उ०: तो संघर्ष तो तय पड़ा हुआ आया वह क्रमश: किसी शक्ति का उदय करता है, वह शक्ति कौन देता है - आस्था। जीवन की आस्था। उसके लिए एक दूसरा और शब्द जो मेरे पास है - राम की आस्था।

प्र०: यह आपने बराबर कहा था कि दु:ख में उदात्तता होती है...

उ०: हाँ।

प्र०: वह आदमी को ऊँचा बनाता है...

उ०: हाँ।

प्र०: आजादी के बाद के विश्वास और उसके बाद की द्विविधा आपको रोकती नहीं है, आप आगे बढ़ते हैं। आज ऐसा लगता है चारों ओर, वैसा तब नहीं था। शुरू में सन् '50-'52 में तो बड़ी आशा थी। आशा आकांक्षा थी बची हुई। लेकिन सारे अनुभवों के बीच में आपने बराबर देखा है कि उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता होनी चाहिए अपनी दृष्टि बनाए रखे। वह जब तक रम न जाए, उसको रचना का विषय न बनाए।

उ०: खरी बात है।

प्र०: जो तल्खी आपमें थी।

उ०: खरी बात है। यह तो मैं बराबर करूँगा और करता रहा हूँ।

प्र०: क्योंकि वह जो तल्खी आपने झेली है, वह तलखी **बूँद और समुद्र** में नहीं है, पच के आई है वह।

उ०: ठीक बात है।

प्र०: पचने का कारण भी था उसका।

उ०: क्या है कि खाने के लिए जो भूमि है, वह मैं टटोल रहा हूँ। देख रहा हूँ - **बूँद और समुद्र** में उस भूमि को मैंने पा लिया है जहाँ रक्तमणि है, खान है, उस खान को मुझे आगे टटोलना है। **अमृत और विष** में आई हैं उनकी समस्याएँ। नए की समस्याएँ भी आ जाती हैं। पुरानी भी समस्या है। पूरी 60 वर्ष की आयु थी। आपको एक मजाक की बात बताऊँ - अरविंद शंकर की आयु बीसवीं सदी की आयु। ख्याल यह आया कि यार सबकी षष्ठी पूर्ति होती है सबकी साठवीं, अब बीसवीं सदी 60 वर्ष की हो गई, यह कोई नहीं कह रहा। तो अमृत और विष के पीछे कहीं मजाक भी है। अच्छा फिर वह मजाक की बात हो गयी। तो अरविंद शंकर की आयु वस्तुतः 60 वर्ष है पूरी-पूरी बीसवीं शताब्दी। लेकिन वस्तुतः जो आज सामग्री दे रहा हूँ, उसकी भूमिका **"अमृत और विष"** में है।

प्र०: बूँद और समुद्र में... । वह आपका पहला बड़ा उपन्यास है।

उ०: हाँ।

प्र०: उसमें प्रेमचन्द जी के साथ यह लोग कहते थे – जैसे गोदान की उनकी शैली थी कि दो उपन्यास साथ चलते थे। दो कथानक चलते थे, वैसा...

उ०: हाँ।

प्र०: आपको "बूँद और समुद्र" में यह लोगों को शिकायत थी कि एक तो कथानक है आपका, और एक आपका दर्शन है। वे दोनों साथ-साथ चलते हैं बाद में **डिस्ट्रब्ड** होते हैं। 'अमृत और विष' में वह आपका जो फिलॉस्फर है, जो विवेचक है, वह ड्राप नहीं होता है, वह मिल जाता है - एसिमिलेट हो जाता है।

उ०: वह तो एक पीढ़ी के बाद पीढ़ी आएगी। **बूँद और समुद्र** में क्या है दो प्रकार के अहम हैं और दोनों ही कलाकर हैं एक के सामने एक कम्पोजीशन है चित्रकार और उसके सामने एक पर्सपेक्टिव है।

प्र०: आपके लेखन की एक और बात अलग है। जो आप नामकरण करते हैं अपने पात्रों का। पात्रों का नामकरण भी तो आपने सोच कर किया है।

उ०: बिल्कुल ठीक। अच्छा निरगुणिया है। नाम क्या रखूँ इसका? नारी भी है, तो नाम निरगुण ही रखूँ। निरगुणिया नाम रखा।

प्र०: नागर जी, एक प्रश्न मेरे मन में है, इतने प्रभावों की हमने बात की और 1952-53-54 तक हम आ गए। **गाँधी** का प्रभाव भी आपके भीतर साथ रहा कहीं?

उ०: बहुत गहरा है शुरू से। आप देखिए, मैंने आपसे पहली बात आरम्भ में ही निवेदन की थी। संस्कार से, जो घरेलू संस्कार से मेरा मन शैव, वैष्णव, हरिहर युक्त था। वह मिलकर के, अब तो वह एक रूप आ गया है स्वााभाविक रूप से संत-परंपरा के व्यक्ति बहुत अधिक मेरे संस्कार के कारण प्रभावित करते है। **गांधी** आरम्भ से ही प्रभावित कर रहे हैं। गाँधी में समय का एक नया बौद्धिक स्वर भी आवश्यक था। वह कमी पूरी की नेहरू ने 'इनसाइड सोवियत रशिया नाइन्टीन फिफ्टी नाइन' में उनका विषय रख दिया। बहुत ही छोटी-सी किताब थी। मुझे सौभाग्य प्राप्त था। कहीं ढूँढूँगा अभी है। तो यह सौभाग्य था नेहरू से ही किताब वह मिली थी। **विजिट इंडिया** आप देखिए कि पूरे समय का आकलन कर रहे हैं और टुवर्ड्स सोशलिस्ट सोसायटी क्रमशः उनकी मनोगति हो रही है। यह उन्हीं की नीति नहीं है राष्ट्र का एक बहुत बड़ा वर्ग है। हम सभी हैं उसमें।

प्र०: लेकिन आपकी जो आध्यात्मिक आस्थाएँ हैं, उनमें गाँधी कहाँ आप को योग देता है?

उ०: संत-परम्परा में और है क्या। 'निर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय' और मुई खाल की साँस सों लोह भस्म होइ जाए। किस बात ने लिखा?

प्र०: बात जब उठ गयी है **खंजन नयन** में सूरदास को और **मानस के हंस** में तुलसीदास को आपने एक दैवी शक्ति [illegible] चमत्कार-प्रतिमा जो प्रदान की है, वह कहीं इनसे तो नहीं जुड़ी हुई?

उ०: तुलसीदास के व्यक्तित्व में तो कहीं निश्चित रूप से बाबा राम जी है। विशेष कर के कुण्डलिनी प्रसंग, भले ही तुलसीदास की आयु में वह देर से आया। मेरे अनुमान से बौद्धिक अनुमान से, जल्दी आना चाहिए। लेकिन क्योंकि बाबा का वह हमने पूरा जमाना गुजरते हुए (देखा) तो राम जी हमारे पास-पास रहा उस वक्त में ओर कोई बात नहीं थी, जो विशेष कहें। और वह जो सारा रूप देखा है जो तुलसीदास में अंकित किया है, वह वस्तुतः बाबा राम जी का ही है। अच्छा, कहीं पर उनके बहुत से मन के प्रभाव अब भी मेरे अन्दर काम करते रहे हैं। आज इस क्षण तक काम कर रहे हैं।

प्र०: **खंजन नयन** में नहीं हैं? सूरदास को भी आप वह ही बताते हैं।

उ०: **खंजन नयन** में बाबा राम जी हो नहीं सकता था। आप कल्पना कीजिए कि 1941 में टाइफून आया बंबई में। सांताक्रुज में एक टीले पर हनुमान जी के मंदिर पर इनकी टूटी-सी झोपड़ी है और वहाँ 15-20 पागल हैं और बरसात में वह झोपड़ी टूटी और पागल भागे। रात भर वह बुढ्ढा इधर-उधर दौड़ कर के पानी में अपने ढूंढ़ता रहा और पागल पकड़-पकड़ कर रात भर लाया। यानी इतना अधिक सेवा-भाव। इतनी अधिक तन्मयता आश्चर्यकारी है। यह ऐसा है कि जो कि आपको छूएगी - बाबा राम जी...

प्र०: उनको देख कर लगता है कि **तुलसीदास** संभव होंगे।

उ०: निश्चित रूप से उससे लगता है कि **तुलसीदास** संभव हैं। आप देखिए मुझे बताइए उत्तर मध्य कालीन समाज में किस संत ने अपने समय का इतना अधिक चित्रण किया जितना बाबा तुलसी दास ने?

प्र०: जो पात्र आप खड़ा करते हैं उसकी पीढ़ियाँ दर पीढ़ियाँ आप आकलित करते हैं। उसका मनोविश्लेषण करते हैं।

उ०: उसका मनोविश्लेषण करने के लिए मैं जरूर अपने मन में..., लेकिन पहली बार इस उपन्यास (करवट) में मैं पीढ़ी-दर-पीढ़ी का, छह पीढ़ी का आकलन कर रहा हूँ।

प्र०: इसके पहले जो पात्र आपके उपन्यासों में आए हैं, वे जीवन के पात्र लगते हैं लगता है किसी घर से आए हैं आपके मन से नहीं आए हैं। मन से नहीं आते हैं घर से आते हैं और उनके परिवार में, उनके परिवेश में उनके सामाजिक आर्थिक संबंध पर प्रभाव डालते हैं।

उ०: खरी बात है। अब वह सोच हो गया। वह दायरा ही सोच का ऐसा हो गया है कि उसमें आप ही अपने आप चीजें आती हैं अब हम उसके लिए बहुत ज्यादा दौड़ धूप नहीं करते। चीजें आप आती हैं। पैटर्न एक बन गया उसका।

प्र०: अच्छा जैसे ऐतिहासिक पौराणिक आपके हैं - **एकदा नैमिषारण्य** हो या **शतरंज के मोहरे** हैं जिसमें कि आप इतिहास को मूर्त्त करते हैं जो पास्ट या गुजरा हुआ है उसको आप प्रत्यक्ष करते हैं। इसके ही लिए शब्द हैं परकाया प्रवेश। तो यह बड़ा टेढ़ा काम है आप जब इतिहास को प्रस्तुत करने लगते हैं सामने करते हैं तो आपको कैसा अनुभव होता है? क्या पद्धति अपनाते हैं आप? निश्चित रूप से पद्धति आपकी, सामाजिक उपन्यासों से अलग होगी।

उ०: देखिए, तरकीब एक ही है। उसके निकट जाना पड़ेगा। तो आप **एकदा नैमिषारण्य** देखिए। समय कितना कुछ बदला हुआ है। हमारे ऊपर दूसरे विदेशी शासकों का प्रभाव पड़ा हुआ है। हमारा पूरा समाज विशृंखलित हो गया।

प्र०: इतिहास को प्रत्यक्ष करने वाली बात थी...

उ०: मैंने इसके लिए ही तो आपको बता दिया - तस्वीरें कैसे आती हैं आपने शुरू में प्रश्न किया था। मैं एक ऐसे सांस्कृतिक संक्रांति काल के लखनऊ में पैदा हुआ जहाँ नवाबी तो चली गई है, पर उसके अलामात पूरे के पूरे बरकरार बने हुए हैं।

प्र०: लिखना शुरू किया बावन से आपने ?

उ०: हाँ!

प्र०: लेकिन उसको आप छियासी में करवट में, पूरे फ्रेम, पूरे चौखटे में देख रहे हैं। आपने खंड-खड देखा है उसको, **शतरंज के मोहरे** में देखा, और बाकी उपन्यासों में देखा। वही चौक है आपका लेकिन इस बार आपने उसको इतिहास के एक कोण पर रखा है, जिसमें पूरा आपने कहा न कि मैं खंडचित्र नहीं देखता हूँ। मेरे सामने एक सड़क है जिस पर लोग आ रहे है जा रहें, चले जा रहे हैं बराबर आते जाते रहते हैं। क्यों कहीं रुकता नहीं वहाँ आने वाला और जाने वाला दिखाई पड़ता है। यह जो क्रम है, पहली बार सन् छियासी में आ कर के पूरे लखनऊ को आपने, एक कोण पर रख के देखा है कि यह इतिहास शुरू हुआ । आदमी सीख रहा है जीवित रहना। धार्मिक अखबार आ रहे हैं, जातीय अखबार आ रहे हैं। अभी बड़े अखबार नहीं आए हैं। जातियों के झगड़े शुरू हो गए हैं, लेकिन सामाजिक आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलन नहीं शुरू हुआ है अभी। उसके पहले का वातावरण आपने लिया है। अब आप आएँगे राष्ट्रीय आंदोलनों पर। तो ये चीजें–**एकदा नैमिषारण्य** में भी एक बार आपने देखा उसको। **शतरंज के खिलाड़ी** में भी इसको एक बार देखा। आपने और उपन्यासों में भी देखा। तो यह जो परिपक्वता आपके लेखन की है कभी सोचते हैं कि पुराने उपन्यासों में कुछ संशोधन की जरूरत है? सोचते हैं, कि कभी किया जाए ? जैसे **एकदा नैमिषारण्य** के निष्कर्षों पर कोई संशोधन आपने सोचा हो। आपने कहा है कभी मैं इसे पुनः लिखना चाहता था।

उ०: **एकदा नैमिषारण्य** ही एक ऐसा उपन्यास है जिसके बारे में हम सोचते हैं कि अगर जीवन बचा और राह बने, तो मैं उसको फिर से लिख डालूँ।

प्र०: क्यों ऐसा अनुभव करते हैं आप?

उ०: उसका कारण है। मेरा यह दुर्भाग्य है कि हिन्दी में उसका पाठक बहुत कम रहा। जापान के शायद आप भी जानते होंगे प्रो० तमाता, चार पत्र उसने लिखे कि आपने जो पुराणों का वैष्णवीकरण किया है। यह कैसे किया है? कैसे किया? उसने जितनी रुचि दिखलाई उतनी यहाँ दिखलाई नहीं देती है। तो दो बातें हमारे दिमाग में आने लगीं। एक तो हमारे बच्चे अब उतने ही यानी हमारे आगे की पीढ़ी, उतना भी अब जुड़ी नहीं रही जितने हम लोग थे। गली मोहल्ले में कथा भागवत् होती है कभी-कभी दादी माँ कहती थी - 'बेटा सुन आएँ'। 'सुन आइए'। यह सामने पीपल के चबूतरे तले हो रही है तब भी सुनेंगे। इतना अधिक सरलीकृत ढंग से नहीं बखाना (इसे) दिमाग (तो) बौद्धिक होता है ...। कल्पना मेरी दबी रही कि उसमे रचना में उतना खुलाव नहीं ले पाया। उन्होंने **मानस के हंस** के ऊपर मुझको चिट्ठियाँ लिखीं तो **एकदा नैमिषारण्य** पढ़ा क्यों न जाए।

प्र०: प्रतिक्रियाएँ कम आई। यह आप मानते हैं कि वह उतना 'कन्विसिंग' या प्रामाणिक नहीं हुआ।

उ०: हाँ, उतना 'कन्विसिंग' नहीं अपना शब्द लूँ उतना प्राणवन्त नहीं हुआ कि आपके साथ में रहता।

प्र०: उसको कहा जा सकता है लेखक की ओर से कि प्राणवंत नहीं हुआ?

उ०: बिल्कुल स्वीकार करता हूँ।

प्र०: मैं यह कह रहा था आपसे कि लेखन जो है, लेखन का धंधा जो है (हाँ) इसमें आपका हिस्सा कितना है और प्रभाव कितना है; सब मिला कर आप ही का तो है। कितना उसमें सरजू का जल है, कितना चौक है, कितना क्या है, लेकिन सब मिला के **नागर** जी का लेखन होता है वह।

उ०: कहीं-कहीं एक होता है। कहीं एक (अलग) होता है।

प्र०: और वह उसी तरह से एक होता है जैसे गंगा (कितनी) नौ प्वाइंट छः। लेखन से वह नौ प्वाइंट छह जो है जो आपकी अपनी विशिष्टता है जो आपका अपना निजस्व है, अपना व्यक्तित्व है। असल में हम लोग उसकी पहचान की बात करते हैं इसी को तुलसी के कोटेशन में मैं स्पष्ट करने की कोशिश कर रहा हूँ इसी को मैं चाहता हूँ आपसे सुनना चाहता हूँ कि यह कहाँ-कहाँ आप अपने को अनुभव करते हैं कि यह मैंने अलग से कुछ कहा है। जो कि सामान्यतः अलग नहीं जो कि कॉमन है उससे बहुत अनकॉमन है यह।

उ०: बंधु यह आपने बड़ा ही कठिन प्रश्न पूछा। एक बार अपनी किताबों को टटोल जाऊँ। लिखे हुए भी अर्सा हो गया और दिमाग इस समय क्या है और जो सबसे बड़ी चीज है दिमाग, मन जो

है उस समय घटाटोप है और वर्तमान जो लिख रहा हूँ उसके मसाले से। तो खोजना पड़ेगा। वैसे इस दृष्टि से भी खोजना चाहिए, यह आपकी बात मैं स्वीकार करता हूँ।

प्र०: जैसे अक्सर पुराने आलोचक जो इंग्लिश के हैं जो जिसे टच आफ यूनिवर्सिलिटी कहते हैं, एक ऐसा विशिष्ट स्पर्श जो सामान्य को विशिष्ट बनाता है।

उ०: यह तो खरी बात है। अब **तुलसीदास** कौन राजा का बेटा है, कौन बड़े पुरोहित का बेटा है। क्या कह कर के अपनी तस्वीर दी है।

प्र०: लेकिन वह सारा सामान्य लिखते हुए जो विशिष्ट लेखन है, लेखक का, जहाँ वह खुलता है।

उ०: तो यह अनुभूति कहाँ से जो विशिष्टता उसकी आप कहते हैं?

प्र०: ऐसा रचनाकार को मिलता है सुख यह।

उ०: वह जो सुख उसको मिला है अंदर, वह ही उसको विशिष्ट बनाता है, आपकी दृष्टि में। अपनी दृष्टि में वह उससे कुछ और अधिक पुष्ट होता है। लेकिन वह जो विशिष्टता है वह आपको दिखलाई पड़ेगी मुझको नहीं दिखेगी।

प्र०: ऐसे कुछ क्षण आए होंगे जीवन में आपके?

उ०: आए बहुत। पचास आते हैं।

प्र०: जैसे दो एक उदाहरण हमको मिल जाएँ कि जब आपने सोचा कि यह हम सामान्य से कुछ अलग सोच रहे हैं, कुछ अलग लिख रहे हैं और यह हम इतिहास को देंगे। यह हमारी देन है इतिहास के प्रति?

उ०: दृष्टि के अनुरूप-के बारे में अवश्य कह सकता हूँ जिसके प्रति मेरा आग्रह है और खुला आग्रह है और विश्वास मानिए कि तनिक भी साम्प्रदायिक आग्रह नहीं है। तनिक भी। आप मानिए। एक दृष्टि–कि अपने समाज के पाठक को किंवदंतियों की जड़ता से निकाल कर उसको सही स्वस्थ मनःस्थिति पर लाएँ। समाज का मूल धरातल वह है। उस धरातल को छू लूँ तो आस्था को छू लूँगा। लेकिन मूल धरातल, कहीं दृढ़ विश्वास के साथ। उसमें कोई लाग लपट नहीं, बनावट नहीं, साम्प्रदायिकता या परायेपन की या ऊँचे-नीचे का कोई भाव नहीं। बस केवल यह अवश्य है कि समाज को, मैं किसी पार्टी का ... (नहीं अनुभव करता), लेकिन यह निश्चित रूप से मानता हूँ कि वह जो नींव है हमारे समाज के सुधारक की वह नींव ही, अगर डगमगा गई, उखड़ गई तो क्या होगा! उसको बचाओ।

प्र०: जैसे व्यक्ति और समाज का संबंध है। व्यक्ति का और समाज का संबंध, आपकी चिंता का सबसे बड़ा विषय है।

उ०: बिल्कुल। यही तो सबसे बड़ी बात है। उसको बचाओ यह सबसे बड़ा मन का आग्रह है मेरा अपना ख्याल है कि इतना अनवरत रूप से हठ इस आग्रह के प्रति साधने वाला और शायद ही कोई लेखक हो मैं यह गलत नहीं कहता हूँ। लेकिन मेरा अपना ख्याल है कि यह मेरी अपनी देन है - विनम्र। हो सकता है गलत हो।

प्र०: नागर जी आपसे साहित्य-यात्रा की बात चल रही थी। **करवट** तक हम आ गए। उसका उल्लेख हुआ, विस्तार से उसकी चर्चा नहीं हुई। इस यात्रा का जो आप हमको कथा सुनाते रहे इसमें और बातें भी आती रहीं। एक तो हम चाहेंगे कि अपनी यात्रा आप आज तक ले आएँ... आगे क्या सोच रहे हैं, हमें कुछ संकेत देंगे ? और मैं चाहूँगा कि इसके साथ-साथ आगे की जो सृजन की प्रक्रिया है वह क्या है? उसके बारे में भी आप हमको विस्तार से बताएँ।

उ०: गोपाल दास भाई, यह सृजन-प्रक्रिया की बात है उसको कहीं पहले की बातों से संक्षेप में जोड़ूँगा। आरम्भ में जैसे कल मैंने आपसे कहा था कि आरम्भिक कहानियों में यथार्थ को पकड़ने की समझ जो प्रेमचंद या शरत के रास्तों से खास तौर से निकली थी, तो वह फोटोग्रॉफिक थी। यानी बोलते-चालते में तसवीरें जरूर पेश कर देता था। यानी अभी वह बोलचाल रही है, कह नहीं रही है खुद अपना वह कहना। जो बात भीतर से अपने आप निकलना शुरू हुई, वह कहना निकलना आरम्भ होती है, तब बुद्धि पक्ष आ ही जाता है। शिल्प उसे अपने-आप जोड़ेगा। सामग्री बटोरो। एक-एक चीज को विधिवत उसकी सामग्री बटोरो। अब हमारे बाबा तुलसीदास जी नाना पुराण... नाना पुराण भी वह पढ़ रहा है, निगम भी पढ़ रहा है, समझ लो कि रामायण भी पढ़ रहा है, और क्वचिदन्यतोपि। वह क्वचिदन्यतोपि सोचे कोई बड़ा आदमी, विनयी आदमी, अब यह कैसे बताएँ कहाँ-कहाँ कहो कैसे बताएँ जो (बात) आई है, वह हमारी है। अच्छा, अब नाना पुराण निगमागम् लिखने के बाद भी क्या आप कह सकते हैं कि तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण की जस की तस नकल की? यानी आप देखिए वाल्मीकि से कुछ पक्ष कुछ चीजों में (यहाँ) बड़ा ही अद्‌भुत आता है। जैसे कि आदिवासियों से तुलसीदास ने राम को जिस तरह मिलाया है या गांव में जा रहे हैं...। अब ये चित्र जो हैं उनके ये तो चलते हुए हैं। घूमता-फिरता आदमी है, एक जगह बैठने वाला नहीं है। वह एक-एक चीज लेता है। सब मिला कर के उसका जो रामचरित मानस है वह और सब रामायणों से बिल्कुल स्वतंत्र, उसकी मौलिक कृति है। ठीक यही होता है - बड़ों का एक अनुकरण इसी तरह से मैं भी करता हूँ। सामग्री बटोर लेता हूँ। सामग्री जैसे **नाच्यो बहुत गोपाल** में ही करी। **नाच्यो बहुत गोपाल** में एक उसके बाद **करवट** में थोड़ा-सा। पहले सब जातियों के रीति रिवाज इकट्ठे कर लिए। मैंने करीब शहर के हिन्दू, मुस्लिम, शिया, सुन्नी विभिन्न जातियों के - मेरे पास सबके रीति रिवाज रखे हैं। अगरचे कायदे से उनके रखने की तमीज मुझको नहीं

है, फिर भी कागज बटोरने की किताबों वगैरह की हो जाए, तो काम की चीजें आएँ समाजशास्त्री विद्यार्थियों के लिए। बहरहाल, सामग्री खूब बटोरी।

सामग्री बटोरने की तो इतनी इच्छा हुई कि यार सबकी सामग्रियाँ तो बटोरीं। एक रह गयी। अच्छा यह आई बात पार पड़ गई। जैसे ईश्वर आगे कहीं चलाने वाला है तो यह इच्छा मन में डाल देता है। फिर असल में हम जहाँ पहले लिखते थे अपनी लेखनशाला बड़ी दूर अलग से बना रखी थी वहाँ जमादारनी नहीं आई। जब तीसरे दिन कोई दूसरी आई तो मैंने पूछा - 'आई क्यों नहीं?' तब वह कथा मिली। कथा मिली तो पुराणों की बात थी कि शायद रह गई हो बराबर में उसको भी टटोलो। आप विश्वास मानिए, मैं डेढ़ साल तक गण्डे बंधवाता रहा हूँ मेहतर-मेहतरानियों से। अब (जब) साठ वर्ष की उम्र थी मेरी तब मैंने यह अक्ल पाई कि यह मेहतर कोई जाति नहीं। यह आदमी की बनाई हुई जाति है। तो यह मैं पाता हूँ तमाम यह नाना पुराण निगमागम सम्मत तो होता ही है।

वह जो क्वचिदन्यतोऽपि इसमें एक हिंदी का मुहावरा मिलता है मार-मार के भंगी बना दूँगा। अच्छा यह कहाँ से आता है, क्यों आता है? इस चीज के पीछे जो और पड़े, सारी चीजें जोड़ने लगे तो असलियत खुली कि यह मनुष्य की बनाई हुई यानी गुलाम जातियाँ हैं, यह वर्णाश्रम धर्म में कहीं पर उल्लिखित जाति नहीं है। सब पढ़ गया मैं। सारी चीज़ पढ़ी और उसके बाद यह निष्कर्ष निकला, तो निष्कर्ष यह मैंने पाया। अब कहेंगे तो मैं कह सकता हूँ कि - मैंने पाया। तो वह क्वचिदन्यतोऽपि की कृपा से ही मिला।

अच्छा तो अब यह रचना प्रक्रिया जब आरम्भ होती है, तो चीजें हम बटोर लेते हैं उनको समेटकर के दुनिया सोचती है,- हम सृजन करते हैं। उपन्यास में तो जीवन की छायानुकृति हो कर के भी वह एक तरह स्वतंत्र भी होती है। ऐसा मेरा मानना है कि वह एक जगह स्वतंत्र भी होती है। उसकी अपनी एक सत्ता हो जाती है। जब तक वह न आए तब तक लिखना नहीं आता। जैसे इसके उदाहरण में भी एक चीज **नाच्यो बहुत गोपाल** से ही शुरू हुई। **नाच्यो बहुत गोपाल** की ओपनिंग आगरे में... एक भंगी बस्ती एक टीले पर है। तो वह टीले के साथ कुछ मिट्टी आगरे आ गई। तो मुझको लगता है जरा और खींच दी जाए तो **द** अक्षर बन जाएगा। मेरे जन्म के मोहल्ले के पिछवाड़े है वह बस्ती भंगियों की; वह देखने गया था तो वहाँ पर लगा कि जरा घुमा दिया जाए तो **द** आ जाए। **द** माने दलित। वह एक प्रतीक बन गया अब वह पूरा चित्र वह हालाँकि वह आगरे की उस टीले की बस्ती का चित्र नहीं है, मैं हर जगह बनावट कर लेता हूँ। थोड़ा-सा अलग मिला देता हूँ लेकिन वह **द** बन गया जिसको ले कर कि मैं चलने वाला हूँ और बनते ही आप विश्वास मानिए, गाड़ी दौड़ पड़ी।

तो निश्चित रूप से समाज को नींव से बताने का मेरे मन का बहुत पुराना आग्रह है। आप देखेंगे कि थोड़ी-बहुत छाप हर उपन्यास में है। चाहे **बूंद और समुद्र** से ले लो चाहे कहीं से लेकिन विधिवत मैं इसको कर रहा हूँ।

प्र०: करवट में है।

उ०: करवट में है वह तो 1902 तक आया। अब 1905 से 2 से 5 तक थोड़ा-सा यों टाइम अपना घसीट ले जाऊँगा। आपको खींचते हुए घसीट ले जाऊँगा। ऐसे नहीं बोर करते हुए नहीं ले जाऊँगा। लेकिन पाँच से स्वदेशी आंदोलन बंग-भंग । अब भारत (पर) एक नई चट्टान गिरी है। जब नई हलचल शुरु होती है, जहाँ से स्त्री आंदोलन, जहाँ से मुस्लिम आंदोलन, जहाँ से अछूत आंदोलन और तेज बना। यानी जितनी, आंदोलनों की जड़ है वे आपको प्रसंग दर्शाता हूँ।

प्र०: यह करवट से अगली पुस्तक में है ?

उ०: यह करवट के बाद जो अब लिख रहा हूँ इन दिनों तीन पीढ़ियाँ इसमें भी मिलेंगी एक वह जो सन् **1986** में रह रही है। कितनी बिखरी हुई! पड़बाबा, लकड़बाबा का जाति के कारण कष्ट सहन किया या जाति से उसका जो ऐसोसिएशन था, अब वह कितना असम्पृक्त हो गया है... नया। अच्छा उसके प्रॉबलम कुछ और बड़े हो गए उसके बाप के कुछ और थे, उसके दादा के कुछ और ये तीन पीढ़ियाँ ! समय को तो लेकर के चल ही रहा हूँ।

प्र०: इसके बाद क्या है आपकी योजना?

उ०: भाई अब तो बोनस के साल हैं जीने के। जीया तो खाली बैठूँगा नहीं। और एक ही उपन्यास है, मेरे पब्लिशर का भी बड़ा आग्रह है और मेरे पाठकों की भी कई चिट्ठियाँ। दो के ऊपर, मीरा के ऊपर, एक कबीर पर लिख दो। तो मीरा पर तो हम फिल्म में लिख चुके है। सुब्बलक्ष्मी वाली! तो अब उसका तो कोई विशेष अर्थ नहीं मगर लगता है यह जो (ठाकुर-कबीर है) कबीरा है। कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ। उस कबीरे को देखो सिकन्दर लोघी को भी ललकार रहा है। उसके भी दरबार में गया। कितना अद्भुत सत्य कहता है। दूसरी चीज **तुलसीदास** ने, सवा सौ बरस बाद आवश्यकता थी कि सगुण को फिर से प्रचारित किया और अच्छा किया । लेकिन जब टूट रही हैं मूर्तियाँ, जब धर्म खण्डित हो रहा है या आप बिखर रहे हैं जिसकी हल्की झलक मैंने **खंजन नयन** में दी भी है, हल्की-सी क्या, क्या काफी झलक दी है। अच्छा, वह जो बिखर रहा है...। उसको ज्ञान था - राम है। वह निर्गुण रूप एक राम तो घट-घट में समाया है। मुझे पंक्ति तो ठीक याद नहीं शायद हो, वह कहता है - यह दशरथ पूत कहाँ ते आया? यानी इस तरह से पूछता है। तो एक जगह वह उस कथा वाले राम को विखंडित करके घट-घट व्यापी राम को रमा रही है।

प्र०: कि दशरथ का बेटा नहीं है।

उ०: दशरथ का बेटा हो या न हो, उससे मतलब नहीं। लेकिन वह **निर्गुण राम** है। राम है, वह आस्था तुम्हारी। जैसे कि कल मैंने आपसे कहा था कि एक संकटमोचन काशी में है। वह दस-दस संकट, चारों तरफ दस-दस महादेव जी के दसों दिशाओं में । यह तो किसी काम से ही आएँगे...। यह

बाबा देता है आस्था में हमें। वह आस्था देता है आपको कबीर जबकि चारों तरफ से आप ध्वस्त हैं तब वह आता है राम है। और यह बहुत बड़ा आपको दम देता है।

प्र०: राम का प्रतीक बना दिया । वैसे राम तो है ही हर जगह।

उ०: यह ही । राम तो प्रतीक मात्र है।

प्र०: जैसे वह मोतिया। राम की मोतिया मेरे नाम।

उ०: अब आप देखिए जिसको, राम के ऊपर आस्था है उसका अंतिम बल देखिएगा कि-"जो कबीरा काशी मरे तो रामहिं कौन निहोर।" आस्था को देखिए कहाँ जाती है।

प्र०: एक किसी स्थान पर पैदा होने से तो अपने आप लाभ मिल जाता है उसको भी इन्कार करके...।

उ०: उसको भी इन्कार करके। यह तो तब है जीवित रहा, राम ने चाहा यह तो तुलसी दास लिख गए हैं चाहे कीन्हि करावै सोई। अब जो दे देगा अगर, पूरा किया तो होगा, नहीं पूरा किया तो क्या करूँगा मैं?

प्र०: अच्छा इस सृजन के मामले में। आपकी आगे की योजना की तो बात हो गई। एक दो बात मैं और पूछना चाहूँगा। आपका लेखन होता है, एक दो उदाहरण मैं आपको दूँ **अश्क** का और **जैनेन्द्र** का। अश्क ने **गिरती दीवारें** लिखी आठ बार लिख कर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ लेकिन प्रकाशित हो गई। जैनेन्द्र लिखवाते है, डिक्टेट कराते हैं। और दोबारा देखते नहीं यह उनका कहना है, मुझसे कहा है उन्होंने। ...तो आपके लेखन में आप कैसे चलते हैं?

उ०: मैं अपने दोनों अग्रजों की कुछ-कुछ तो नकल करता हूँ। यानी अश्क की तरह लिखता हूँ काटता हूँ करैक्ट करता हूँ एक बार मेरा कोई नॉवल - उसकी तीन स्क्रिप्टें बनी हैं। एक बार लिखाऊँगा लिख के कुछ करेक्शन्स किए। फिर टाइप होने दिए। टाइप होकर जब व्यवस्थित पेज रूप में आ जाते हैं तब फिर उसको बैलेंस कर के रखता हूँ। फिर करैक्शन करता हूँ। तब उसके बाद फिर फाइनल कॉपी टाइप होती है। तो मेहनत तो पूरी करता हूँ । इसमें से चूकता नहीं। जैनेन्द्र भाई बड़े हैं। क्या कहूँ कि लिखने के बाद देखता नहीं।"

प्र०: इसके साथ एक चीज और जोड़ना चाहता हूँ। आपके उपन्यासों में **फिल्मी लेखन** का बड़ा प्रभाव है। दृश्य जो हैं, ऐसे आते हैं जैसे फिल्मों के दृश्य चल रहे हों। दूसरी बात जो हम दोनों की तरफ से है कि आपके लेखन में विस्तार बहुत होता जाता है कहीं-कहीं ऐसा लगता है कि बात बहुत बढ़ गई है। चाहे **बूंद और समुद्र** हो, चाहे **खंजन नयन** का अंतिम चरण हो या **मानस के हंस** में बहुत से प्रसंग ऐसे आते जाते हैं। अगर आदमी पढ़ने में उनको छोड़ दे तो ऐसा लगता है कि उसने कुछ खोया नहीं है।

उ०: आपकी पहली बात से शुरू करूँ। फिल्मी बात। यह सच है कि मैं फिल्म में रोटी के लिए गया। लेकिन जो काम करता हूँ । एक शास्त्री के एक वाक्य ने मुझको और स्वर्गीय महेश कौल को, दोनों साथ ही साथ हम लोग पढ़ते थे, वह वाक्य मेरा मन्त्र बन गया -नेवर फोरगेट दैट इट इज ए मोशन पिक्चर एण्ड ईयर्स आफ आर फोर थिंग्स बिहाईड द आइस। दृश्य है सामने। दृश्य में एक्शन है। कान तो यानी डायलॉग्स जो है वह तो खाली सहायता करते हैं, उस एक्शन को एक्सप्रेस करने में कुछ और अधिक सहायता देता है। तो दृश्यात्मकता सामने आई। अच्छा, यह सिनेरियो राइटिंग में मैं जित्ते दिन रहा इज्जत की कमाई। जहां तहाँ एक्शन्स देता था। साइलेंस फिल्म का सिनेरियो बहुत ही प्रामाणिक इस दृष्टि से होता था क्योंकि उसके डायलॉग ज्यादा नहीं होते थे, अधिकांश सिनेरियो लेखक आज कल करते क्या हैं। शुरू किया श्याम कमरे में बैठा होता है द एण्ड। राम आया। सिगरेट फूंकते हुए आया। - "क्या कर रहे हो? अब वह श्याम ने जबाब दिया और राम श्याम की बातें चल रही हैं अब बातों को आप फिल्माइए। एक्शन नहीं है। कहानी नहीं लगती। तो यह एक गुर हमने जरूर समझा था।

इस गुर को, उसी बंबई ने यह गुर दिया, उसी बंबई ने एक गुरु भी दिया। बिंबों को साध के देखना, गतिशीलता है। बिंबों में तुम्हारे गतिशीलता, जीवन में गतिशीलता है। स्थिर कर के देखें। कहीं केंद्रित, केन्द्रीभूत करके देखता है। दो विधाएँ हैं। आप दिमाग को बिल्कुल छोड़ दीजिए। सन्नाटे में और एक ही तरफ देखें कुछ नहीं सोचूँगा। दिमाग में नहीं कुछ भी आने दूँगा और देखूँगा क्या आता है। मैंने वह भी तरीका कुछ दिन प्रैक्टिस किया है और एक तरीका और भी है-आप रख लेते हैं। जो भक्तों का तरीका है, आप चरण रख लेते हैं सामने । चरण राम जी के भी हो सकते हैं वह राम कुमार जी के भी हो सकते हैं। चरण एब्सट्रेक्ट है। वह कंक्रीट एक फार्म लेते हुए भी एब्सट्रैक्स ही अधिक है। आप केन्द्रीभूत होते हैं भक्ति की धारा बहाते हैं। क्रमशः आपके बिंब उस धारा से चलने लगते हैं। तान्त्रिक के बिंब जो हैं दूसरी तरफ से चलते हैं। क्रमशः आते हैं। अग्नि के द्वारा आते हैं फिर कैसे क्रमशः आते-आते फिर वह कृष्ण भी आता है। कैसे कृष्ण के सूर की स्ट्रीम बन जाने से आपका मन आता है कैसे ऊपर आपके। उसके ऊपर बिंब आरोपित होते हैं, उनकी अपनी एक विधि है। भक्तों की विधि है सारी एक कथा का वह है यह चरण के बहाने। कैसे राम जी सामने आते हैं। अब राम जी को देखने की ललक जो है वह आपको, आपकी दृष्टि को स्थिर कर देती है। यह स्थिरता, ये दोनों तरकीबें मिलकर के मेरे उपन्यासकार का शिल्प बनी हैं। यानी फिल्म का भी प्रभाव है और कहीं दूसरे तरीके का भी प्रभाव है एक प्रैक्टिस तो छूट गई दूसरी प्रैक्टिस अब भी करता हूँ, *क्योंकि आर्टिस्ट हूँ* हुजूर।

एक जगह सब कुछ करके भी खानाबदोश हूँ। आवारा हूँ। मन तो है, उसको बाँधना तो पड़ता है अब न बाँधूगा और केवल उसको स्वतन्त्र छोड़ दो तब तो वह बेकार हो जाएगा। यहाँ एक बात आपसे और कह दूँ। हो सकता है गलत हो आप लोग विचारक हैं।

मेरे खातिर, कला में तीन गुण हैं। एनेलाइज करो तो वे तीनों अलग-अलग आते हैं। एक होता है जैसे **फार्म आफ कंटैम्प्ट** यह तो जैसे बचपन से घुट्टी में पड़ा हुआ है। साहित्यिक शैशव काल से ले के, पढ़ते-सुनते चले आए-डिस्कस, फार्म आफ कंटेम्प्ट। अच्छा फार्म में शिल्प में आ गया। केवल मनोरंजन मात्र है शिल्प की विधा को आप देखते चले जाइए। निरुद्देश्य है, उद्देश्य नहीं है। एक होता है कि कला जीवन के लिए। तो साधता तो मैं उसको हूँ मेरी सारी कृतियों में भी आप देख सकते हैं। साधता तो मैं उसको हूँ। सोद्देश्य जीवन। तो उसके बीच में भी एक तीसरी तस्वीर जो कल ठाकुर प्रसाद ने भी हमसे हमारा चोर पकड़ कर बात करनी चाही थी, उनमें थोड़ी-सी बात निकली थी। तीसरी एक होती है जो कि आप न उद्देश्य रखकर बैठे हैं न निरुद्देश्यता से उसके बैठे हैं। आप उद्देश्य के साथ कहीं बैकग्राउंड में। तो जुड़ा हुआ है- पृष्ठभूमि में। पर अब वह चेतना उद्भूत होती है। यों निकलती है बेहोशी में। ऐसे, कई तस्वीरें आ जाती हैं कि करीब-करीब हर नावल में ऐसे में बोलते-बोलते आप विश्वास मानेंगे एक चीज का, फिल्म की वजह से मुझे शायद यह आता हो त्राटक की अवस्था। बोलते-बोलते अटक जाएगी कहीं नजर और बोलने का रस इसीलिए अधिक होता है। आप सच मानिएगा मेरे सामने ऐसा होता है मेरे करैक्टर्स आकार में हैं। चल फिर रहे हैं। उनको देख रहा हूँ इतनी डिटेल में देखी हुई वे तस्वीरें होती हैं कि तसवीरें चलती फिरती नजर आती हैं। तसवीर स्थिर नजर आती है उनके भाव नजर आते हैं। विश्वास मानिए आप, मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। समझ गए। यह होता है। कंसंट्रेशन से होता है। कभी जब आप इतने ज्यादा डूब जाते हैं अपने में, तो बोल तो रहे हैं लेकिन आप नहीं बोल रहे हैं। आपके अंदर कोई और बोल रहा है।

प्र०: क्या यही विस्तार नहीं दे देता है आपके लेखन को?

उ०: हाँ यह आपका सवाल तो ठीक है। लेकिन मेरा ख्याल है कि कारण पूरा-पूरा यह नहीं है। कारण एक और भी है। मेरे पास सूचनाएँ इतनी अधिक एकत्र हो जाती हैं कि कभी-कभी बचकाना जोश जो है...।

प्र०: छोड़ने का मोह।

उ०: सीधी बात कहूँ चोरी अपने मन की बतला दूँ। लेकिन आमतौर से कोशिश करता हूँ कि इस तरह से न करो एडिटिंग करता रहता हूँ फिर भी शायद...।

प्र०: यह स्वीकारोक्ति महत्वपूर्ण है। इससे विश्वसनीयता तो बढ़ती ही है चीजों की। अच्छा यह (बात) इस क्रम में ही चल रही है तो आपका चलचित्रों का जीवन – सात बरस का था...।

उ०: हाँ।

प्र०: और यह आपको शुरू के लेखक, लेखन का भी समय है-पीरियड जिसे कहते हैं।

उ०: हाँ। उसके पहले लेखन का समय शुरू हो चुका - उससे पहले।

प्र०: हाँ मैं उद्वेलित था और आप फिल्म में गए और आपको फिल्मों ने बहुत चीजें दीं। वही जगह जहाँ से **प्रेमचन्द** जी असफल हो के लौट आए थे। वहाँ आपको भी कहीं-न-कहीं- दबाव महसूस होता रहा होगा।

उ०: बिलकुल।

प्र०: लेकिन उस पर हम जाते नहीं। जीवन में बहुत-सी बातें करनी पड़ती हैं जो आपने भी कीं। जिनके लिए हमारे पास कोई औचित्य नहीं है। लेकिन हम करते हैं। वैसे ही फिल्म का-आपका जीवन है। वैसे आपने आकाशवाणी में काम किया, प्रोड्यूसर रहे आप ड्रामा के यह जीवन आप की रचना के साथ चलता रहा। जैसा कि आपने कहा कि आज़ादी के बाद नहीं बल्कि पहले ही सन् '57 की हलचल के आसपास मध्यवर्ग इस देश में आया है। तो मध्यवर्ग के पास अपने जीवन यापन के, अपने साधन विकसित हुए। वे पारम्परिक साधन, उसके पास नहीं थे, जो हमारे पुराने कवियों और साहित्यकारों के पास दरबार था। न अब दरबार है न मंदिर है। हमने अपनी तीसरी दुनिया खोजी। यही तो आप खोज रहे थे हिंदी के बहुत से साहित्यकार कहीं-न-कहीं अपने को जोड़े हुए जी रहे हैं, लिख भी रहे हैं, कहीं-न-कहीं कमा भी रहे हैं वह। आप उन थोड़े से साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने कुछ अंश तक तो जिंदगी का प्रारम्भिक दौर आपने बिताया नौकरी के साथ, कुछ करने के साथ क्योंकि जीवन बीतना जरूरी है। उसके बाद **प्रेमचन्द** जी की तरह आप ने साहस के साथ वह सहारा छोड़ दिया। जिसे कहते हैं कि मस्तूल तोड़ डाली नावें जला डालीं और एकदम आप कूद पड़े। दूसरी जिन्दगी शुरू हुई आपकी। और उसमें ऐसा है कि आप लिख रहे हैं लेकिन जीवन यापन नहीं हो पा रहा है। क्योंकि अभी रॉयल्टी ऐसी आई नहीं। न लेखक के रूप में आप ऐसे स्टेवलिस्ड हैं कि आप विश्वास कर सकें और हिन्दी भी अभागी ऐसी है, अपने लेखक को क्या दे पाती है? वह एक युग गया। ऐसे युग में **प्रेमचन्द** जी को कितना कष्ट झेलना पड़ा है। उन्होंने प्रेस बनाया, पत्रिकाएँ निकालीं, प्रेस का पेट भरने के लिए और दुनिया भर के काम **बनारस** में किए। उसके बाद एक ऐसा पीरियड आया आपके जीवन में जबकि आप अपनी रचनाओं की रॉयल्टी पर, पारिश्रमिक पर खड़े रह सकते थे। यह सभी समय आया। और आज एक ऐसा समय है कि आप को **अवध गौरव** का पुरस्कार दस हजार का मिला, तो आपने **रमई काका** जी की बेटी की शादी के निमित्त दे दिया उसको।

तो एक बड़ा सजग, बड़ा संघर्षपरक जीवन है आपका पूरा और उसकी सफलता इसी में है कि आप जीवन के अंत में, मतलब यह है कि आप इतना साहस कर सकते हैं कि अपने मन की कर सकें। इस पर थोड़ा आप प्रकाश डालिए। एक लम्बा दौर है, लेकिन यह आने वाले लोगों के लिए बहुत ही बड़ा भारी डॉक्यूमेंट होगा एक प्रमाण-पत्र होगा जीवित रहने के लिए।

उ०: थोड़ा-सा अपने व्यक्तिगत जीवन पर (प्रकाश) डालना पड़ेगा। हमारे बाबा बैंक के मैनेजर थे, लेकिन प्राइवेट महाजनी कुछ किया करते थे। पिता स्वभाव से तो नहीं थे पर उनके एक मित्र थे बाबू उदयनारायण मेहरोत्रा, वह ही उनके कागज-पत्र रखते थे। यानी बैंक, चैकबुक, उनके मरने के बाद हमको बाबू उदयनारायण जी ने दी '-यह तुम्हारे बाप की है। रखी हुई है। तुम ले जाओ तो वहाँ से जाकर कहा-"पैसे लेने हैं तो हम इलाहाबाद आएँगे, इलाहाबाद बैंक में चलेंगे। वह चैक उन्होंने, पिताजी की लिखी हुई रखी है-काटी। जो भी महाजनी थोड़ा-सा चलते हुए, वह चल रहा था। जब तक पिताजी का देहान्त नहीं हो गया तब तक बचपन, खाता-पीता खुशहाल था, मैंने पैसे का अभाव नहीं जाना..

प्र०: कितने बरस की उमर थी जब आपके पिताजी गए?

उ०: उन्नीस बरस। मैंने कोई भी अभाव नहीं जाने। अच्छा, अब कुछ करना है। करना है तो, यह नौकरी करने के लिए जी नहीं चाहता। यह कुछ मन की ज़िद है। अच्छा तो क्या करें? कुछ अखबार निकालने का बहाना करा। आपको बता दिया, हो गया। वह, महाजनी! इधर-उधर जा रहे हैं हम। जो होता है, साइकिल ले कर के जा रहे हैं तकाजा करने के लिए। अब उसमें चित्र देखने को मिलते, तरह-तरह के – मजबूरी के। हम तकाजा कर रहे हैं, हम कहाँ सख्त बनेंगे? तो एक बैंकर के नाते नितान्त असफल व्यक्ति हुआ लेखक, जो कि आगे और भी लेखक होने वाला है। पैसा कहाँ से आए? **चकल्लस** निकाला। चकल्लस खूब चला।

आचार्य द्विवेदी से लेकर के मुझे यह भी सौभाग्य प्राप्त है हिन्दी का कोई भी नामी लेखक ऐसा नहीं है जिसने कि **चकल्लस** पर लिखा न हो। **कौशिक जी** हैं, **प्रेमचन्द** नहीं थे उस समय, कौशिक भी हैं और **द्विवेदीजी** का चित्र भी, **नन्ददुलारे वाजपेयी** हैं, यानी किसी को ऐसा न था जिसने लिखा न हो। अच्छा, तो सबने सहयोग दिया। अखबार चल तो खूब रहा है, कागज पर इतनी आमदनी मुझे होनी चाहिए लेकिन बैंक में नहीं है। आमदनी वैसी ही। जो पैसा निकाला है, वह लौटकर नहीं आ रहा है। एज ए बिजनेस मैन हम फेल करते हैं। हमारे ऊपर ओवरड्रॉफ्ट है।

सन् 30 में चाँदी कुछ बहुत सस्ती हुई थी। किसी मित्र ने सलाह पिता को दी कि-सिलवर लो। वह चालीस तक, उनतालीस तक सैकेंड वार आने पर चाँदी का भाव बढ़ा तो बम्बई में इलाहाबाद बैंक में एक हमारे रिश्तेदार ऐजेंट थे तो हमने सोचा उन्हीं से सलाह लें। और तो कहीं, यहाँ बात बनेगी नहीं। तो बैंक इधर से उधर स्टाक ट्रांसफर होने की बात खाली हो जाएगी। गए उसके फेर में। कुछ बनी, कुछ नहीं बनी। अच्छा, तो हमने देखा कि वह निरर्थक है।

.. .. ..

प्र0: गीतकार?

उ0: गीतकार। लखनऊ में ही रहते थे। तो **प्रदीप** हमको ले गए धर्मशाला से उठा के अपने कमरे में। तो हमने कहा -'यार यहीं बैठो। ऐसा लगता है कि काम नहीं बनेगा फिल्म हम भी देखें।' तो बगल का कमरा प्रदीप के सामने ही एक कमरा और था खाली, वह मकान मालकिन से हमको मिल गया।

प्र0: किस समय की बात है यह?

उ0: यह सन् चालीस की बात है। तो हमको 15 रुपए किराए पे मिल गया। यहाँ हमको मिल गए **चकल्लस** के ही एक ग्राहक थे– **रामनाथ डागर**। द्वारका नाथ डागर, बीकानेर के बहुत बड़े धनवाले किशोर साहू इनको जबरदस्ती फँसा लाए थे। इंडिया ऑर्ट्स चल रही थी। एक बंबई हिन्दी विद्यापीठ था। वहाँ हम भी गए थे। वहाँ दादा जी से भेंट हुई। -'नागर जी, हमारे यहाँ शूटिंग देखने आइए। कहाँ रहते हैं? गाड़ी हम भेजेंगे'।

अब देखिए, बिल्कुल भगवान सही करता है। आप सच मानिए इस बात को। तो गाड़ी भेज दी। घर गए खाना-वाना खाया। उनके यहाँ शूटिंग देखने गए स्टूडियो में। बना हुआ खाना हम खा रहे हैं और गाड़ी आ ही जाती है, खाना वहीं खा रहे हैं और उसके बाद स्टूडियो में जा रहे हैं। अच्छा, एक दिन दादा को कुछ कमीवेशी थी तो हमने कहा - यह तो नहीं होना चाहिए। तो हमसे द्वारका कहते हैं कि -'पण्डित जी, आप कहिए, किशोर साहू से।' यानी दोनों मित्रों ने कहा कि-'पण्डित जी आप कहिए।' तो हम किशोर के पास गए।

उसके बाद ही इन्होंने हमसे कहा - पण्डित जी आप यहाँ रह जाइए। अरे अंधा क्या चाहे दो आँखें। यही तो चाहता था। प्रदीप को दो सौ रुपये मिलते थे। हमसे पूछा -'तुम क्या लोगे?' हमने दो सौ कह दिया। हम ढाई सौ कहते तो ढाई सौ भी मिल जाते। अच्छा अब हम जब बैठ गए फिल्म में, तो जैसे आपसे अभी निवेदन किया कि वह सारी चीज मैंने एडिटिंग टेबल पर शॉट्स कटते हुए देखी। कहाँ पर रुकता है? कहाँ पर बात है और **नेवर फॉरगेट** यह तो मन्त्र ही बना। तो सिनेरियो लिखने की कला हाथ में आई। इस वजह से थोड़ी पूछ हुई। पैसा कमबख्त तब भी न मिले। यानी आधा-लेखन लखनवी तकल्लुफ का, तो दूसरा गुजराती तकल्लुफ का। कैसे मजे में गला काटता था! खैर लेकिन चीजें इसमें कुछ बनीं। कुछ अच्छी चीजें बनीं। सिनैरियो में नाम कमा लिया था।

तो इसकी वजह से जिसको जरूरत होती थी वह आता। जैसे **उदयशंकर** बाद में आए।

प्र0: कल्पना वाले?

उ0: अच्छा जैसे **शुभलक्ष्मी**। इस बीच में एक प्रयोग और हुआ। उस समय में सैकेंड वार थी। तो अंग्रेज रूसी भाई-भाई थे। सोवियत फिल्म कुछ आई। वह डब करना चाहें। तो पहले गए **दीवान**

सागर के पास। तो भाषा एक (चीज़) है। वहाँ पर आपका उच्चारण.. मुँह कैसे, होंठ खुलते हैं, मिलते हैं.. ? वह कोई उस समय नहीं था। अच्छा किसी ने कह दिया -'वहाँ जाओ।' हमारे पास आए। जब आए तो एकाएक मन ललचाया कि देखना चाहिए-करें। चूँकि एडिटिंग टेबल पर हम शॉट कटते देख चुके हैं। यह एक कारण था उसका। तो अब शीशे में बैठे हुए हमने उनसे कहा कि -'रूसी स्क्रिप्ट हमको दे दीजिए।' और उसके ट्रांस्लेशन की एक कॉपी जो अंग्रेजी में है - वह दे दीजिए।' अब शीशे में बैठे-बैठे अ आ इ ई उ ऊ में इत्ता मिलता है, प फ ब में होंठ मिलते हैं कहाँ कितना मिलता है कहाँ मैं इस अक्षर की जगह इस अक्षर को जोड़ सकता हूँ। इस तरह से दें कि डायलॉग की तरह सुनने में लगे। तो हमने एक दो रूसी फिल्में कीं नसीरूद्दीन एंड बुखारा, और जो काम आया।

प्र०: नागर जी, लेकिन आप इनका जो मूल प्रश्न था, उससे थोड़ा-सा हट गए हैं।

उ०: बोलिए, आप अपना मूल प्रश्न फिर बता दीजिए।

उ०: वही जो आपका लेखन है। वह पहले चलता है समानान्तर आपके जीवन के साथ, और वहाँ नहीं।

उ०: और वहाँ नहीं है, फिल्म में फिल्म ही लेखन कर रहा हूँ, इतना टाइम नहीं मिलता है कि मैं बात करूँ।

प्र०: फिर आपने फिल्में छोड़ीं फिर आप लखनऊ में आए, फिर स्वतंत्र लेखन किया फिर जो सीन इस तरह हुआ...।

उ०: न न न जब लखनऊ आया हूँ उस समय स्वतंत्र लेखक की तरह से आया हूँ और अब जो स्वर्गवासिनी है, उसको धन्यवाद दूँगा कि -'तुम चलो तुम्हारा जी यहाँ नहीं लगता, चलो तुम – लिखने।' इसमें वह शेरनी जो थी, वह मुझे बल देने वाली बहुत थी। जब कहीं से नहीं मिलता था तो सामने से, उसने कहा-'तुम चलो।' अच्छा, तो आ गए हम। यहाँ आ गए। यहाँ आ कर के संघर्ष चला। अब चले हैं तो चप्पल चट्का रहे हैं - मंत्रियों के पीछे नहीं। बूढ़े-बुढ़ियाओं के, गली मोहल्ले के बूढ़े-बुढ़िया **बूंद और समुद्र** के लिए मसाला-पहला मसाला जो हम बटोर रहे हैं जिसके कि नोट्स बनाए थे मद्रास में। मद्रास में दूर बैठे हुए, वह अभी रजिस्टर रखा है हमारे पास। तो उसमें यह वहाँ पूछना है, यह वहाँ पूछना है। अमुक लायब्रेरी की समस्या-क्रमशः सामाजिक विकास की...।

महाकाल जरूर पूरा हो गया है। अच्छा अब उपन्यास लेखक ही बनने की इच्छा है। लखनऊ आ गए। गाड़ी नहीं चलती है। किसी तरह से वह चल रही है। प्रोड्यूसर तो थे नहीं। उत्तर भारत में अकेला ड्रामा प्रोड्यूसर, पहला मैं बना हूँ। दक्षिण में उसके साथ में एक।

प्र०: सोमसुन्दरम, आकाशवाणी में।

उ०: सोमसुन्दरम हमारे। तो दो ड्रामा प्रोड्यूसर थे। अच्छा ड्रामा का तो शौक है। ड्रामा की सारी चीज है उसकी एक बैक ग्राऊंड है। मुझे चाहे लखनऊ लेखक संघ की गोष्ठी में जाना हो या कहीं रिहर्सल के लिए जाना है, पाँच बजे अगर पहुँचना है तो मैं चार बजे एक दो करता हुआ अपना, पैसे हैं नहीं और जाना है काम करना है तो पैदल जाऊँगा। लौटते वक्त का किराया खर्च लूँगा लेकिन पैदल आऊँगा। इस तरह से करूँगा। यह पूरी जिम्मेदारी निभाते हुए संघर्ष के साथ मैं चला हूँ। एक चीज और रखी है। दोनों ही काम करने हैं; अपना भी लिखना है। पेट जो पालना है। तो दो हफ्ते देंगे पेट को, और दो हफ्ते लिखेंगे। अच्छा कभी-कभी ऐसा हुआ कि नहीं लिख पाए। तीन हफ्ते पेट को देने पड़े। एक हफ्ता लिखेंगे। लेकिन लिखेंगे जरूर। उसी वक्त में इस कशमकश ने हमको रेडियो की..। **पन्त जी** थोड़े से कृपालु थे। और पंतजी का बहुत आग्रह था। अब उसमें आ के फंस गए। अब जब यहाँ आए तो एक वातावरण अच्छा-सा शुरू में मिला, हम कबूल करते हैं वातावरण अच्छा था और आ गए तो हमने यहाँ तरह-तरह के प्रयोग किए। **सम्पूर्णानन्द** की **पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल तक** मैंने बनाई। तुम्हारे सामने के लाईन में मुख्तार को लेकर के गया। कुँए के अन्दर नीचे को करते हुए, आवाज आवे-माइक डाल कर के। वहाँ मुख्तार बैठा है। वह बोलता है। यानी तरह-तरह के प्रयोग भी किए..।

अच्छा लेखन की विधा में भी अंतर आया। यह **गिरिजा कुमार माथुर** हमारे एक किसी शिष्य को अपने साथ ले आए थे। देखो इसमें गूंगा पात्र नहीं आ सकता। अब खोपड़ी में एकदम से आ गयी। -'आ क्यों नहीं सकता? फोर डायमेंशन का मीडियम है इसमें क्यों नहीं आ सकता? मैंने कहा-'आ सकता है।'–"दद्दू नहीं आ सकता।" अच्छा वह भारत भी पीछे पड़ गया। तो गूंगी यानी हिरोइन कहीं नहीं आती, जबकि 45 मिनट का प्ले उसी के ऊपर आधारित है, और पूरा चित्र उसका आता है। तो इस तरह से रेडियो से भी सीखा। इसमें लिखने की बात जहाँ तक है टॉक देना है ...।

प्र०: यानी लेखन का वह पीरियड। वह चाहे सिनेमा का रहा हो चाहे रेडियो का रहा हो, उस पीरियड में भी चुनौती आपने लेखन की स्वीकार की। साथ-साथ उससे आपकी भाषा मंजी?

उ०: देखिए, हमको लिखना है। मैं, यह तय है कि एक लेखक बनूँगा। मैंने शायद आपसे कहा भी था कि गलत या सही वैसे अब तो बहुत बरोबर हूँ। अब कोई सवाल नहीं है। लेकिन मेरे दिमाग में यह था कि अल्ला मियाँ का पद भी, लेखक के पद से छोटा है।

प्र०: नहीं यह तो एक सामान्य धारणा हिंदी के लेखकों में है कि **स्वतंत्र लेखन** ही **सही लेखन** है।

उ०: हाँ।

प्र०: लेकिन आपको इन बातों से एक बात और मेरे मन में उठती है कि लेखन की चुनौती, काम करते-करते भी स्वीकार की जा सकती है। बहुत सारा लेखन हिंदी में ऐसे लोगों ने किया है जो कि सुबह से शाम तक जूझते हैं, फिर भी अच्छा लिखा है उन्होंने। तो ऐसा नहीं कि लिखा नहीं जा सकता है।

उ०: नहीं, कर सकते हो आप! आप जो दूसरे लेखक हैं, क्रिएटिव सृजनात्मक साहित्य के संबंध में, उदाहरण थोड़े बहुत में ही सामने हूँ आपके। बौद्धिक लेखन के संबंध में पढ़ाते हैं डा० रामविलास...। अध्यापकी करते हैं तो ...

प्र०: रामविलास जी तो आपके घनिष्ठ मित्रों में से रहे हैं। हाँ तो राम विलास जी का भी तो तरीका जीवन का आपने बहुत-सा, दैनिक भी देखा होगा मंडी में। कैसे उन्होंने लंगोट लगा के सारा काम किया है।

उ०: जम कर के काम करते हैं जीविका की भी एक (लड़ाइ) लड़ रहे हैं।

प्र०: हाँ तो एक वह लड़ाई जीवन की थी।

उ०: और रिसर्च भी कर रहे हैं। प्रेमचन्द की शताब्दी में मैंने कितनी बार कहा यह। क्षमा करना किसी लेखक ने उस बात को गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। हमने कहा -**प्रेमचन्द** ने हमको लिखना सिखाया-खरी बात। आदमी सरकारी नौकरी में है। बंधी तनख्वाह मिल रही है उसको। तब कुछ है, लेकिन वह कीड़ा इस कदर काटता है कि -'नहीं इससे नहीं। हम और करें।' तो अनवरत वह व्यक्ति लिखता रहता है। अनवरत वह उसी के लिए-छापे का पेट भरना है... प्रेस का..

प्र०: जब देखा कि लिखना अब संभव नहीं लगता तब नौकरी छोड़ी। तब बाधा पड़ने लगी लिखने में।

उ०: यह बात है। और उसी लिए फिल्म में उन्होंने..

प्र०: ऐसा नहीं है कि तब तक उन्होंने अच्छी रचना नहीं की हो।

उ०: फिल्म का ग्लैमर कितना भी हो पर लेखक...।

प्र०: -नागर जी, थोड़ा-सा जीवन पे ज्यादा हम चले गए हैं। साहित्य पर ही अपने को..

उ०: नहीं, यह तो आवश्यक था।

प्र०: हाँ हाँ आपने पात्रों की बात कही थी कि आपकी निगाह टिक जाती है-पात्र आपके सामने होते हैं। आप अपने पात्रों में कितना जीते हैं। आपके पात्रों में आत्मचरित्रात्मक कितने हैं? कहीं ताई है, कहीं बाबा जी का जिक्र आता है कहीं निरगुणियां है, कहीं आपके मणिशंकर या अभिशंकर हैं। ये कहाँ-कहाँ आप अपने पात्रों में बोलते हैं, कहीं पहचानना चाहेंगे?

उ०: एक बात हो जाती है। उधार लूँ एक बड़े सन्त का वाक्य। रामकृष्ण परमहंस से किसी ने पूछा-'क्या आपने ईश्वर को देखा है?' 'अरे पगले, नमक की पुतली समुद्र की थाह लेने गयी। कब घुल गयी कौन जाने?' तो जब एक उपन्यास का ढाँचा आ जाता है सामने पात्र हो और पात्र अब भी, आप विश्वास मानिए कि लोग, अधिकतर लेखक पात्रों की खोज में हैं-'कहाँ से आएगा?' और मैं इतना घूमा-फिरा हूँ, इतने चेहरे इतने लोगों की बातें हैं कि मुझे पात्र ढूँढ़ने में इतनी कठिनाई नहीं होती। अच्छा, तो जब एक ढाँचा तैयार हो गया उसमें कहाँ हूँ मैं और कहाँ नहीं हूँ उस सम्पूर्ण में हूँ.. । और कहीं-कहीं मेरा व्यक्ति सभी कहीं अपने में बोल पाता है, कहीं किसी छोटे पात्र में भी बोल सकता है। यह आवश्यक नहीं कि वह महत्वपूर्ण पात्र में ही हो। कभी किसी बड़े पात्र में भी आ जाता है। लेकिन सीधी बात है दूसरा कोई दृष्टांत नहीं देता हूँ। नमक की पुतली जो उपन्यास-सागर में घुली, मैंने अपने सृजनात्मक अंतर को लय किया। सृजन में बड़ा कठिन है वह... ।

प्र०: एक बड़ी सामान्य-सी स्थिति में, लेखक होने की यह शर्त है-अपने को विलीन कर देना।

उ०: बिल्कुल सही बात है। बड़ा कठिन है यह कहना कि मैं कहाँ हूँ?

प्र०: लेकिन एक पुरानी आदत है हमारे पाठकों की और आलोचकों की कि वे अक्सर बड़े उपन्यासकारों की, बड़े कवियों की रचनाओं में अक्सर कुछ ऐसे पात्र ढूँढ़ लेते हैं जिनको मानते हैं कि यह उनका आत्म परिचयात्मक पात्र है। अब ऐसा कुछ खतरा आप किसी पात्र में.... ?

उ०: अब यह तो विद्वान लोग ढूँढ़ते हैं, भई मैं अपनी तरफ से यह कह सकता हूँ हमें यह सभी नहीं कहना कि मैं कही हूँ। मेरी पत्नी कहीं नहीं है, मेरे भाई कहीं नहीं हैं, यानी जो बहुत मेरे निकट के हैं वे कहीं, कुछ ऐसे आत्मीय अनुभव हैं जो कहीं हैं.. । लेकिन जब उपन्यास के ढाँचें में चीज आ गयी तो वह रूप अपना बदल लेती है और कहाँ किस तरफ से फूटती है... ।

प्र०: **प्रेमचंद जी** का आखिरी उपन्यास **मंगलसूत्र** अधूरा रह गया। उसमें जो उसके नायक **ध्रुवप्रकाश** जी हैं, वह **प्रेमचंद जी** हैं, ऐसा लोग कहते हैं अब दो लड़के उनको भी हैं दो लड़के उनके भी हैं... ।

उ०: अब यह है, कहीं न कहीं समानता आपको, मुझमें भी मिल जाएगी। लेकिन यह कहना बड़ा कठिन है। यह बहुत कठिन है। जब हम एक में हो जाएँगे तो हम लय हो जाएँगे। यह दृष्टिकोण ही मेरे ख्याल में एकांगी है, अधूरा है कि आप यह ढूँढ़ें कि किस पात्र में लेखक है? लेखक तो संपूर्णता में है। वह लय होता है।

प्र०: ठीक है यह बात स्पष्ट करती है आपके लिखने के ढंग को, आपके सोचने के ढंग को, क्योंकि बहुत से लोग कहते हैं कि ऐसा नहीं होता। लेकिन आप कहते हैं कि नहीं ऐसा भी होता है। अब

जैसे कि आपने बहुत से पात्र लिए। उपन्यास आपके बहुत प्रमुख हैं। लेकिन आपकी अपनी जो एक जिंदगी रही है वह ज्यादातर आपकी कहानियों में दिखाई पड़ती है। लेकिन आपके उपन्यासों ने आपकी कहानियों को, बिल्कुल शैडो कर रखा – ढाँक रखा है। ऐसा अनुभव करते हैं कि नहीं आप ?

उ०: ऐसा न कि चरित, कहानी में तो एक तरह से हम लेंगे, उसी के ऊपर ध्यान रहता है। उसका अधिक डिटेल दे देते हैं। उपन्यासों में जो बड़े चरित्र हैं, उनके तो अधिक डिटेल लेंगे। जो छोटे एक्टर्स हैं - रंगीन, आए चले गए। आपका मन थोड़ी देर बहला गए कहीं पर और चले गए। इसलिए आप उनके ऊपर ध्यान नहीं देते कहानियों में क्या होता है, वह चरित्र फैलकर के थोड़े विस्तार के साथ में विचित्र हो कर के आते हैं। समझ गए लेकिन यह भी विश्वास मानिए कोई भी पात्र मैं जस का तस नहीं उठा के रखता। मैं उसका मनोवैज्ञानिक ढाँचा देखता हूँ। और उस ढाँचे में कई अनेक पात्र मिल जाते हैं। उनकी खूबियाँ मिलाकर के, फिर एक नया पात्र खड़ा करता हूँ।

प्र०: कहानियाँ आपने कम लिखीं।

उ०: कहानियाँ मेरा ख्याल है 75-80 के आसपास हैं।

प्र०: उनमें लेकिन कुछ कहानियाँ व्यंग्य-हास्य की हैं?

उ०: हाँ।

प्र०: वे ज्यादा उभर कर आई वे लोगों को याद हैं।

उ०: हाँ।

प्र०: और उससे आपका एक चरित्र बनता है आपके बारे में। आप चाहे दुःखी से दुखी हों, लेकिन जो आपका प्रभाव मंडल, परिचय मंडल है उसमें आप एक आनन्दी जीव के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपकी मूर्त्ति आपकी कहानियाँ बनाती हैं या आपका व्यंग्य लेखन बनाता है। तो इसके विषय में कुछ...

उ०: बन्धु व्यंग्य को क्या आप रस की ही एक वृत्ति नहीं मानते? आनन्द का उसमें...

प्र०: नहीं वह तो अच्छी बात है, कोई शिकायत नहीं करता हूँ।

उ०: रस की एक वृत्ति है।

प्र०: वृत्ति है और बहुत आवश्यक वृत्ति है।

उ०: और आवश्यक वृत्ति है।

प्र०: अच्छा वह बहुत मुश्किल भी है।

उ०: और कठिन भी है। अच्छा तो वह रसवृत्ति अनेक तरह से, जैसे मैं आपको बताऊँ आरम्भ में लिखा **कॉमरेड प्रेमदास, देवेदास** की पैरोडी।

प्र०: पैरोडी आपने बहुत लिखी। **आँसू** की पैरोडी भी आपने लिखी एक जमाने में आँसू का भी क्रेज था छाया हुआ था।

उ०: किसान सोहन लाल की..

प्र०: सोहनलाल किसान की पैरोडी।

उ०: सजे सजाए हाट हैं और ठीक उनके सजे सजाए दो पाट, जिनमें जा के सब बने लाट कुछ कोट और पतलून डाट यह तेरी हड्डी पर जवान यह तेरी हड्डी पर किसान।

प्र०: लेकिन बात अपनी जगह पर ठीक रही।

उ०: बात अपनी जगह जैसे **निराला** की है विजन वन वल्लरी पर सोती सी सुहाग भरी किरन के कोट में सोती थी इक भरे नवरस मय अमल कुमल तंत्र में कवि की कलम। दृग बंद किए शिथिल कोट की जेब में बुरका मुँह पर था पड़ा फाउंटेन पैन की कैप भाव विधुर प्रिय संग छोड़ किसी कलवरिया में था कवि जिसे कहते हैं मनमौजी। आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर रात। आई याद किसी के कोठे की काली रात। आई याद फिर क्या हाला के प्याले में मारी लात। कवि चल रहा इक्के ताँगे मोटर से भरी सड़क गली दर गलियों को पार कर, पहुँचा जहाँ करता था केलि कलम के साथ। निराला के मैटर में बिलकुल जोड़ दिया है।

प्र०: विजन वल्लरी पूरी कविता उसमें हैं।

उ०: इस करुणा के निज कलम में क्या एक सुरसुरी उठती क्यों हा हा कार हृदय में वेदना अंकित मस्तिष्क पटल पर क्यों कुंजड़िन की ये बातें गालियाँ सुनाकर भी उसने क्यों मारी लातें।

प्र०: **प्रसाद जी** का हो गया।

उ०: वह रंग भी है। एक मस्ती के आनन्द में यह रसोद्रेक तो होता ही है।

प्र०: जब आपकी सुरसरी उठती थी जैसे कालदंड की चोरी है तो मैं ऐसी परिस्थितियों की कल्पना कर लेता कि जो हैं नहीं, लेकिन एकदम प्रत्यक्ष कर देते हैं आप।

उ०: आप नया साहित्य खोज रहे हैं टाइम के बदलने की शेखियाँ बघारने का असल में क्रोध आया (तब)। शेखी बघारने पर यह क्षोभ हुआ। अब मन बहलाने के लिए पहले नाटक कर लेता कुछ देर, बच्चे तो अब भी कभी-कभी खेलने के मिल जाते हैं...

जासूसी पढ़ लेता हूँ, मन बहल जाता है। तो जासूसी बहुत पढ़ी इलाहाबाद में। यह दुनिया, शरलक होम्स, कालदंड की चोरी में आ जाए, तो क्या हर्ज है।

प्र०: ऐसा पीरियड आता है, ऐसा समय आता है जब कि आदमी अपने को बिल्कुल खाली महसूस करता है कि अब कुछ लिखने को नहीं है, अब क्या लिखा जाए। एक बहुत पुरानी बात है। एक बार **प्रभाकर** जी ने बताई थी कि उनके पास कुछ लिखने को नहीं था उस समय। लेकिन कंपोजिटर प्रेस का मानेगा नहीं। उसको तो दो कॉलम का लेख चाहिए। तो उन्होंने यही लिखा कि **क्या लिखें?** यह उल्टा लेखन था। लेकिन वह उन्हीं के पास पत्र है। देखा था मैंने द्विवेदी जी का, कि आचार्य द्विवेदी ने लिखा था – महावीर प्रसाद ने, कि यदि ऐसी दस रचनाएँ लिख दो आप तो हिंदी के मशहूर साहित्यकारों में आपका नाम सुरक्षित हो जाएगा।

उ०: क्या बात है - क्या बात है !

प्र०: तो कभी-कभी जैसे आप कहते हैं कि लेखक का मन, खाली मन लिखवा देता है या जैसे आपने उस दिन अनमना वाली बात कही थी। यह अनमनापन आप पर भी कभी-कभी हावी होता है, लेखक की कमज़ोरी है।

उ०: कभी-कभी तो आता ही है। यह इन्सानी कमजोरी है। कभी लेकिन वह, किस तरह से आता है कि किसी कारण उस उदासी का अनमनेपन का कोई और है (कारण) लिखना नहीं है... दिमाग में भरा हुआ है। आपकी कृपा से भगवान की कृपा से इतने करैक्टर्स हैं कि मर जाऊँ तो भी खत्म नहीं होंगे। भरे हुए हैं। जितना घूमता हूँ उसमें कारण क्या है? कि आप लोग सभी लेखक घूमते हैं, देखते होंगे आदमी से मिलते हैं। मैं जिनसे मिलता हूँ उनके इंटरव्यू गाँवों से लेकर शहरों तक और वेश्याओं तक और मेहतर-मेहतरानियों तक,.. इंटरव्यू का पेशा है - वे तरह-तरह के चेहरे, तरह-तरह की बातें तरह-तरह की मुद्राएँ.. । जब मैंने कहा कि - ध्यान करें, तो बहुत से चेहरे आ जाते हैं। मेरे तो सचमुच देखे हुए चेहरे बहुत सारे हैं।

प्र०: जब लिखते हैं तो प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

उ०: ...तो प्रत्यक्ष हो जाते हैं। लेकिन खाली मन कभी-कभी ऐसा होता है - कौन लिखे?

प्र०: सभी का होता है। टैगोर ने भी लिखा है कि..

उ०: वह कोई और कारण होते हैं जबकि ऐसा अनमनापन आता है। लेखन का मसाला मेरे पास नहीं है, यह नहीं है। यह भगवान की कृपा है।

प्र०: नहीं यह खाली पन मसाले की कमी से नहीं होगा। अखिर मन भी तो कुछ है।

उ०: तो वह मन, जैसे लखनऊ में बाढ़ आती है तो..

प्र०: है तो. हाइएस्ट लेकिन - वहाँ तक पहुँचती है - बाढ़। वैसे मन भी पहुँचता है कभी-कभी। जैसे कहानियों में व्यक्त होता है। आपकी छोटी व्यंग्य रचनाओं में व्यक्त होता है, आपके निबंधों में व्यक्त होता है। निबंध भी आपने लिखे हैं काफी और आपकी जो यात्राएँ हैं जो आपने की हैं, बीच-बीच में लम्बी यात्राएँ की हैं, यात्राओं से कुछ लाते हैं आप? यह सब इकट्ठा कर लेते हैं? लेकिन कभी-कभी मन में होता होगा कि ऐसी रचना जो मुझे बहुत भावे और मैं यह फिर लिखूँ, तो अच्छा होगा। जैसा आपने कल भी कहा था।

उ०: **एकदा नैमिषारण्य** के बारे में।

प्र०: ऐसी कोई चीज जो सोचते हों कि जिसको जिंदगी मिले तो फिर लिखा जाए।

उ०: नहीं। देखिए मुझे थोड़ी-बहुत शिकायत तो हरेक के बाद, होनी ही है। उपन्यास में भई यह लिखना चाहता हूँ, यह पैरा रह गया, यह थोड़ा जिसका वास्तव में मैं पूरी तरह से संशोधन करना चाहता हूँ। मैंने आपको कल बताया।

प्र०: आपके संबंध उत्तर प्रदेश-शासन से भी रहे हैं - कभी अच्छे संबंध रहे हैं। उनके बहुत से काम आपने किए हैं जैसे कि **गदर के फूल** आपने लिखा तो आपको पूरा घूमने का इंतजाम किया उन्होंने। लेकिन इस समय एक बड़ा आन्दोलन चल रहा था कि -'शासन और साहित्यकार' मतलब **व्यवस्था** और **साहित्यकार**.. इस संबंध में क्या मत है आपका?

उ०: बंधु यदि व्यवस्था से पूरी तरह घुलमिल जाए साहित्यकार तो फिर वह चाटुकार हो जाएगा। साहित्यकार नहीं होगा। सीधी बात है। तो उसका अपना व्यक्तित्व लेखकीय व्यक्तित्व अलग रखते हुए मैं हरेक के साथ, सहयोग करता आया हूँ। मैं लेखक रहा हूँ - चप्पल चटका कर के, घूम कर के, सारे जमाने को (देखते हुए) हर एक रंग के आदमी से घुलमिल करके... (लेखन किया)। अगर मैं चौधरी की तरह से रहता तो मुझे कई करेक्टर न मिलते, माफ कीजिएगा। तो व्यवस्था से भी मिलता हूँ उतना जहाँ कि एक काम हो सकता है।

प्र०: नहीं! शुरू से दो तरह के साहित्यकार रहे हैं...

उ०: हाँ!

प्र०: और आज ऐसा माना जाता है यह सब लोग मानते हैं मैं नहीं कह रहा हूँ कि जैनुइन प्रामाणिक साहित्य लिखने के लिए आदमी को नाराज़ होना जरूरी है, और नाराज़ भी किसके खिलाफ- सत्ता, सरकार के खिलाफ आपकी नाराज़गी अमूमन सत्ता के खिलाफ बन जाती है. ।

उ०: हाँ।

प्र०: नाराज़गी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ, नाराजगी कुरीतियों के खिलाफ बन जाती है...।

उ०: हाँ।

प्र०: नाराज़गी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ, नाराज़गी कुरीतियों के खिलाफ होनी चाहिए। नाराजगी आपमें भी रही है, शुरू से असहमत रहे। लेकिन ऐसा माना जाता है कि आज कम ही साहित्यकार होगा जो नाराज नहीं रहा हो - आजकल बहुत बड़ा वर्ग मानता है।

उ०: वह तो एक सही है हमारा यार - **अश्क** । (समवेत हँसी) अच्छा लेकिन वैसे यह सही बात है कि आप जब तक समाज के विभिन्न अंगों से घुलते मिलते नहीं, क्योंकि सहयोग समाज से लेना है हमको व्यक्ति को. (तब तक बात नहीं बन पाती)। हम दोनों ही एक-दूसरे के प्रति प्रतिबद्ध हैं। समझ गए? लेकिन जहाँ पर अपने व्यक्तित्व को अलग रखा, वहाँ तो अलग होंगे ही।❑

॥ रचना वाङ्मय शरीर जिनका : डा० हरिवंश राय बच्चन ॥

कवि बच्चन ने समय और जीवन को अपने ढंग से देखा-परखा तथा अपने लेखन में कहा है। अपने समय के प्रायः सर्वाधिक लोकप्रिय कवि के रूप में जन-मन में स्वीकृत समादृत रहे। मधुशाला, निशा निमंत्रण आदि काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक अन्य विशिष्ट पुस्तकों, अनुवादों के सुविख्यात लेखक – **बच्चन**।

उन्हीं के शब्दों में :

"मैं जीवन की हर उष्णता के प्रति रिएक्ट करना चाहता हूँ। मैं किसी एक बिन्दु पर स्थिर नहीं हो सकता हूँ। मैं किसी शैली से बँधा नहीं हूँ। शैली को पैटर्न नहीं बनने दिया है। मैं मुक्त छन्द लिखकर किसी जमात में मिलना नहीं चाहता हूँ। मेरी सम्पूर्ण रचनाएँ, मेरा वाङ्मय शरीर है...।"

संग्रहणीय रेडियो-जीवनी रिकार्डिंग की शृंखला में बच्चन जी के साथ ऐतिहासिक मूल्य का यह विस्तृत वार्तालाप, तीन दिनों तक चला था। इनसे बातचीत की थी - प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, वरिष्ठ समालोचक, विद्वान, अनेक ग्रन्थों के रचयिता, श्रेष्ठ साहित्य सेवी एवं आकाशवाणी के एक पूर्व निदेशक और वरिष्ठ प्रसारणकर्मी - श्री गोपाल दास ने।

॥ रचना वाङ्मय शरीर जिनका : डॉ० हरिवंश राय बच्चन ॥

प्र०: आपकी साहित्य-यात्रा पूरी अर्द्ध-शताब्दी की है। और इस अर्ध शताब्दी की यात्रा में अनेक मोड़ हैं। मैं बातचीत प्रारम्भ करता हूँ रचना प्रक्रिया के संबंध में आरम्भिक प्रश्न कर के। पहले मैं यह जानना चाहता हूँ, कविता लिखने की प्रेरणा आपको कब और कहाँ से प्राप्त हुई? आपकी पहली रचना कौन-सी है? क्या आपको अपनी प्रथम रचना का स्मरण है? प्रायः लोग उसे भूल जाते हैं, इसलिए मैं यह जानना चाहता हूँ?

उ०: विजयेन्द्र जी, मैंने अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ प्रेरणा से कीं ही नहीं, कौशल से कीं। अपने लोअर प्राइमरी स्कूल के दिनों की याद करता हूँ। हमें विभिन्न विषयों पर लेख लिखने को कहा जाता था। स्कूल के पंडित जी ने सिखाया था कि लेख का अन्त अगर किसी दोहे से किया जाए तो वह अच्छा समझा जाता है। किसी पर लेख लिखना है, उसके अनुरूप दोहा मुझे याद नहीं, तो क्या करूँ। एक दोहा रचता हूँ और लेख के अंत में लगा देता हूँ:

लालच बुरी बलाय है उससे रहिए दूर।
कूदी बहुत लोमड़ी मिला नहीं अंगूर॥

या घोड़े पर लेख लिखना है, दोहा बनाता हूँ –

घोड़े पर जो चढ़ गया उसे भगाता तेज।
घोड़े से जो गिर गया उसका फूटा भेज॥

'भेज' यानी भेजा। भेजा के लिए भेज भोंडा लगता है। पर मैं अपने को इस तर्क से सन्तुष्ट कर लेता हूँ कि छोटा अगर छोट और बड़ा अगर बड़ हो सकता है तो भेजा को भेज क्यों नहीं कह सकते हैं –

छोट कुमार खोट बड़ भारी।

मेरे पिताजी प्रतिदिन एक घंटे रोज रामचरित मानस सस्वर पढ़ते थे। दोहे-चौपाई की लय मेरे कानों में इतनी रची-बसी थी कि बिना छन्द मात्रा के ज्ञान के, केवल लय के सहारे, मैं दोहा-चौपाई रच सकता था।

प्रेरणा से लिखने का समय कई वर्ष बाद आया, जब मुझमें भावुकता विकसित हो गई थी। किन कारणों से शायद उसे बताना यहाँ प्रासंगिक न हो। इस समय उसका यही रूप मैं जानता था कि मन की बात होने या न होने पर मैं अतिशय प्रसन्न या अतिशय दुःखी हो जाता था। और उस अवस्था में किसी को अपना साझीदार बनाने की व्याकुलता व्यापती थी। जिस शब्द माध्यम से साझीदार बनाया जा सकता था, वही मेरे लिए **कविता** हुई।

यह उन दिनों की बात है जब मैं कायस्थ पाठशाला में छठी या सातवीं कक्षा में पढ़ता था। हमारे एक अध्यापक थे वह स्वभाव से बहुत कोमल थे और विद्यार्थियों को बड़े प्यार से पढ़ाते थे। जबकि और अध्यापक कठोर थे और हम पर बड़ा रौबदाब रखते थे। किसी कारण से वे स्कूल छोड़कर जाने लगे। क्लास के लड़कों ने उन्हें भावभीनी विदाई दी। उनके जाने से मैं विशेष दुःखी हुआ था और उस समय मैंने उनके लिए एक कविता लिखी थी, जो मैंने उस अवसर पर सुनाई भी थी। वह मेरी पहली कविता थी। भाव कुछ यूँ था – हम आपको कुछ स्मृति स्वरूप देना चाहते हैं, पर हमारे पास कुछ भी तो नहीं। हम आपको एक फूल की माला दे रहे हैं, पर इन्हें फूल न समझिए, फूल के रूप में हमारे हृदय ही इसमें गुंथे हैं। उस कविता की एक यही पंक्ति मुझे याद है–

दीन जनों के पास मणि-मुक्ता के सुन्दर हार।

पर आश्चर्य है मेरे एक सहपाठी को पचास वर्ष के बाद भी वह कविता पूरी याद थी।

प्र०: दूसरा प्रश्न जो इसी के साथ जोड़ा हुआ तो नहीं है, लेकिन आपकी लोकप्रियता से जुड़ा हुआ है। आपकी गणना सामान्यतः छायावादोत्तर कवियों में होती है। और यह माना जाता है कि चौथे दशक के कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय कवि, **बच्चन** थे। इस लोकप्रियता के मूल में आप किस तत्व को प्रधान मानते हैं?

उ०: मेरी लोकप्रियता के कई कारण थे। यह तो सर्वविदित है कि मुझे लोकप्रियता **मधुशाला** के कारण मिली। अगर आप मधुशाला के गुणों का विवेचन कर लें, तो आपको सहज ही मेरी लोकप्रियता का रहस्य मिल जाएगा। मधुशाला की भाषा सरल थी, पर वह सरल, सरल की चेतना के साथ नहीं थी वह जीवन की सहज अभिव्यक्ति की भाषा थी। सच्चाई तो यह है कि मधुशाला में भाव चेतना की इतनी उद्दामता है कि भाषा की ओर ध्यान देने की जरूरत ही नहीं पड़ती। शब्द एक भावप्रवाह में बहते चले जाते हैं। फिर, मधुशाला मुक्तकों में है। भावों में कितनी ही गहराई या व्यापकता हो उन्हें चार पंक्तियों में संश्लिष्ट कर दिया गया है। श्रोता व पाठक को उन्हें समझने के लिए देर तक या दूर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। मधुशाला प्रतीकात्मक काव्य है, पर वहाँ प्रतीकों की बहुलता नहीं, केवल चार प्रतीकों-मधुशाला, मधुबाला, प्याला, हाला से कितने ही भाव विचारों का संकेत कर दिया गया है। संकेत, क्योंकि श्रोता या पाठक यहाँ केवल निष्क्रिय बनकर, केवल आँख या कान खोल कर नहीं बैठ जाता। वह मधुशाला पर अपने भाव-संसार का आरोप करने लगता है। वह एक प्रकार से सहसर्जक हो जाता है। और अंत में मधुशाला के पीछे एक विशिष्ट व्यक्तित्व का आभास होने लगता है, जो कहीं न कहीं सबके अन्दर है पर किन्हीं वर्जनाओं के कारण खुलकर, मुक्त होकर, निर्भीक हो कर अपने को प्रकट नहीं कर पाता। मधुशाला इस व्यक्तित्व को उद्घाटित करती है। मधुशाला की लोकप्रियता के मूल कारण मेरी समझ में यही हैं।

कुछ लोग मेरे कण्ठ को भी मधुशाला की लोकप्रियता का श्रेय देते हैं, पर उसे मैं गौण मानूँगा। बाद की कविताओं में मधुशाला के कवि की रचना का आकर्षण माना गया हो तो आश्चर्य नहीं। मधुशाला के कवि ने लोगों को यह विश्वास दिलाया कि यह कवि, जीवन और जीवन के अनुभवों के प्रति सच्चा है। वह जो कुछ कहता है उसका अपना भोगा-जीया है। उसमें अपनी बात कहने की वह भाषा और वह कला है जिससे वह अपने श्रोता और पाठकों को अपना सहभागी बना सके। वे मेरे पास आते गए, क्योंकि जितना ही वे मेरे पास आते गए, उतना ही उन्होंने अपने को पाया। वही कवि लोकप्रिय होता है जिसकी कविता पढ़ते या सुनते हुए पाठक या श्रोता, यह अनुभव करने लगता है कि वह अपनी (बात) के साथ ही, हमारी बात भी कह रहा है। हमें अपनी बात कहनी होती तो हम इसी तरह कहते या यही कहते।

प्र०: ठीक है, मधुशाला की बात तो समझ में आती है। लेकिन, आपकी प्रारम्भिक कविताएँ वैयक्तिक सुख-दुःख की अनुभूति पर आश्रित हैं। संवेदनीयता के स्तर पर उनका प्रभाव तो स्वीकार्य हो सकता है, किन्तु सामाजिक स्तर पर उनका मूल्यांकन करने में उन्हें आप समष्टि चेतना का काव्य किस प्रकार कहेंगे?

उ०: आप व्यक्ति को समाज से एकदम अलग करके क्यों देखते हैं? अपनी अनुभूतियों के पहले दौर में मैंने अपने को समाज से अलग देखा या पाया था। इतना ही नहीं, मैंने उसे अपने विरोधी रूप में भी देखा था समाज को। पर धीरे-धीरे मुझे यह अनुभूति हुई कि समाज का बाहरी रूप ही उसका असली रूप नहीं है। समाज के अन्दर ही अगर भावनाओं के बीज या अंकुर न होते तो मेरे जैसा कवि उसमें जन्म ही न ले सकता था। मेरी लोकप्रियता ने मेरे लिए यह सिद्ध किया कि मैंने अपनी किसी विशिष्ट चेतना को वाणी नहीं दी, बल्कि उसकी चेतना को ही अभिव्यक्त किया है। या उसकी चेतना के किसी पक्ष को मुखर किया है। इस रूप में अगर आप मेरी कविता को समष्टि चेतना का काव्य मानना चाहते हों तो आप मान सकते हैं।

प्र०: एक यह कारण हो सकता है। लेकिन आप अपनी कविता का मूल स्वर क्या मानते हैं? यदि प्रेम और शृंगार आपकी कविता का मूल स्वर ठहराया जाए, तो क्या आप उसे स्वीकार कर लेंगे?

उ०: क्यों नहीं!

प्र०: **मधुशाला** जैसी लोकप्रिय कविता का प्रतीकार्थ तो रहस्य में होगा, किन्तु श्रोता या पाठक तो उसे अभिधा से ही ग्रहण करता रहा है, प्रतीकार्थ का ग्रहण कम किया गया है। क्या आपने उसे किसी दार्शनिक मुद्रा में प्रतीक-योजना के साथ लिखा था?

उ०: मेरी एक कविता की पहली ही पंक्ति है:

प्यार जवानी जीवन, इनका जादू मैंने सब दिन माना।

में बार-बार कहता रहा हूँ कि मधुशाला प्रतीकात्मक काव्य है। जहाँ जीवन है, जीवन्तता है, प्राणवत्ता, उत्साह है, उमंग है, वहाँ **मधुशाला** है। मधुशाला वह नहीं जहाँ पर मदिरा बेची जाती है:

भेंट जहाँ मस्ती की मिलती, मेरी तो वह मधुशाला।

जहाँ लोग अभिधात्मक अर्थ लेते हैं वहाँ शायद अपनी किसी कमजोरी को प्रश्रय देने के लिए। फिर भी मेरा ऐसा ध्यान है कि ऐसों की संख्या बहुत कम होगी। मुख्य रूप से तो मधुशाला का प्रतीकात्मक रूप ही स्वीकृत और सम्मानित हुआ है।

प्र०: यह ठीक है कि विद्वत् समाज में और समाज में तो यही स्वरूप लिया गया। लेकिन, मैंने कही थी सामान्य जनता की बात। खैर, उसे छोड़िए आप यह बताइए कविता या साहित्य कवि के व्यक्तित्व की उपलब्धि होती है, क्या आपकी कविता आपके व्यक्तित्व का सही पारदर्शी प्रमाण है?

उ०: वास्तविक व्यक्तित्व और साहित्यिक व्यक्तित्व, ऐसा कोई विभाजन मेरे साथ नहीं किया जा सकता। मेरी कविता में मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही अभिव्यक्त हुआ है। मेरी एक पंक्ति है:

आज मैं सम्पूर्ण अपने को उठा कर, अवतरित ध्वनि शब्द में करने चला हूँ।

पर एक बात समझ लेनी होगी। व्यक्तित्व कोई रूढ़ या जड़ वस्तु नहीं होता। उसमें देश, काल, परिस्थिति, परिवेशगत परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों को यदि आप ध्यान में रखेंगे तो मेरे किसी समय की कविता को मेरे उस समय का सही और पारदर्शी प्रमाण पाएँगे।

प्र०: ठीक है। अब एक प्रश्न जो गोपाल दास जी ने भी प्रारंभ में संकेत किया था - आपकी रचनाएँ मुक्तक शैली में हैं। क्या कभी प्रबंधात्मक कविता लिखने की इच्छा या प्रेरणा आपके भीतर उत्पन्न नहीं हुई? मुक्तक की अपेक्षा महाकाव्य या प्रबंधकाव्य उत्कृष्ट माना गया है। इस विषय में आपके क्या विचार हैं? अभी तक आपने कोई प्रबंध काव्य नहीं लिखा है इसलिए आपसे प्रश्न कर रहा हूँ।

उ०: जीवन के अनुभवों की तीव्रतम स्थितियों में ही मुझे कविता लिखने की प्रेरणा हुई है, और इसके लिए मुक्तकों को ही मैंने उपयुक्त माध्यम माना है। प्रबन्ध अथवा महाकाव्य में भावनाओं की तीव्रतम स्थितियाँ सर्वत्र नहीं रह सकतीं। उसका बहुत बड़ा भाव वर्णनात्मक होता है, जिसमें मुझे रुचि नहीं हो सकी। एक प्रयोग करके मैंने बहुत पहले देख लिया था।

मैं एक समय **नल-दमयन्ती** पर एक **प्रबंध-काव्य** लिखना चाहता था। कुछ अंश लिखा भी था। पर उसमें मेरा मन नहीं रमा और मैंने उसे छोड़ दिया। लिखा (हुआ) भाग नष्ट भी कर दिया। मगर, आप अगर मेरी सारी कविता को एक लम्बी कविता मानकर चलें, तो शायद वह आपको एक **महाकाव्य** ही प्रतीत हो। अपनी **आत्मकथा** के तीनों भागों में मैं बराबर यह संकेत देता चलता हूँ कि मेरी कविता मेरे जीवन के साथ समानान्तरता बनाए हुए है। मैंने आत्मकथा तो

लिख दी है पर मेरा ऐसा ध्यान है कि अगर मैंने आत्मकथा न भी लिखी होती तो मेरी कविता से मेरे जीवन की कथा प्रायः सही-सही अनुमानित की जा सकती थी। स्वभाव से अंतर्मुखी होने के कारण मैं अपने महाकाव्य में अपने को ही नायक के रूप में रख सकता था यह दूसरों के देखने की चीज़ है कि मैं अपने में, अपने युग-देश को कितना बिम्बित कर सका हूँ। मेरी कविताओं की लोकप्रियता शायद इस बात का सबूत है कि मुझमें, मेरे पाठकों ने केवल मुझे नहीं देखा, अपने को भी देखा और पाया है।

प्र०: ठीक है। आपकी कविता को, समस्त कविता को, प्रबंधात्मक रूप में देखना तो कठिन होगा। लेकिन फिर भी यह जरूर जानना चाहते हैं कि प्रबंध काव्य या महाकाव्य, सन्देश देता है। अपनी कविता द्वारा आप पाठकों को सन्देश देना चाहते हैं? क्या सन्देश देना कवि के लिए अनिवार्य है? क्या आपका कोई जीवन–दर्शन है जो कविताओं में ध्वनित होता है?

उ०: अपने काव्य जीवन के प्रारम्भिक दिनों में मैंने एक कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक था "आत्म परिचय"। उसका अंतिम पद है -

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता निश्शेष लिए फिरता हूँ,
जिसको सुनकर जग झूम-झूम लहराए,
मैं मस्ती का सन्देश लिए फिरता हूँ।

इस मस्ती के सन्देश के यह मायने नहीं हैं कि शराब पी कर पड़े रहो। मेरी मस्ती के अर्थ हैं आज़ादी, निर्भीकता, स्वाभिमान कुछ कर गुज़रने की हसरत, खतरा उठाने की हिम्मत, परिणाम के प्रति बेफिक्री। यानी संक्षेप में एक फक्कड़ाना अंदाज। आप चाहें तो उसे अक्खड़ाना भी कह सकते हैं। अभी मैंने दीवानों का वेश की बात कही है, एक कविता से उसे देखिए -

सिर पर बाल घने घुंघराले।

यह मैंने अपनी जवानी का एक चित्र यहाँ उपस्थित किया है:

प्र०: हमने देखा था वह रूप आपका।

उ०: हाँ, तो याद होगा आपका

सिर पर बाल घने घुंघराले
काले कड़े बड़े बिखरे काले।
कड़े, बड़े बिखरे से,
मस्ती आज़ादी बेफिक्री बेखबरी के हैं सन्देशे।
माथा उठा हुआ ऊपर को,

भौंहों में कुछ टेढ़ापन है,
दुनिया को है एक चुनौती, कभी नहीं झुकने का प्रण है।'

और इस मस्त और दीवाने की बीसों पंक्तियां मेरे दिमाग में गूँज उठी हैं:

मुझको न ले सके धनकुबेर
दिखलाकर अपना ठाठबाट,
मुझको न ले सके नृपति मोल,
दे माल खजाना राजपाट।
अमरों ने अमृत दिखलाया, दिखलाया अपना अमर लोक।

ठुकराया मैंने दोनों को, रखकर अपना उन्नत ललाट।
बिक मगर गया मैं मोल बिना, जब आया मानव सरल हृदय।
हुई थी मदिरा मुझको प्राप्त, न थी वह भेंट, न थी वह दान।
अमृत भी मुझको अस्वीकार्य अगर कुंठित हो मेरा मान।

और यह मस्त और दीवाना ऊँचे इरादे रखता है, ऊँचे लक्ष्य बनाता है। और यह मानकर भी कि इन्हें प्राप्त करने में खतरे उठाने पड़ेंगे, वह पीछे नहीं फिरता।

बिजली से अनुराग जिसे हो, उठकर आसमान में नाचे।
आग चले आलिंगन करने, तब क्या भाप धुँए से भागे।
साफ उजाले वाले रक्षित पन्थ मरण के, क्रन्दन के हैं,
जिन पर खतर-ए-जान नहीं था, छोड़ कभी दीं राहें मैंने।

यह फक्कड़ाना अन्दाज है। और उसे दुनिया से मिलने वाले यश-अपयश की भी परवाह नहीं है।

करे कोई निन्दा दिन रात, सुयश का पीटे कोई ढोल।
किए कानों को अपने बन्द, रही बुलबुल डालों पर बोल
सुरा पी, मद पी, कर मधुपान।

और मेरे समकालीनों में यह तेवर **बालकृष्ण शर्मा नवीन** और **भगवती चरण वर्मा** की कविताओं में भी देखा जा सकता है। "तुम कैसे नवीन मतवाले" या हम "हम मणि केतन में" या "हम दीवानों की क्या हस्ती है, आज यहाँ, कल वहाँ चले" आदि में। और एक बात और बता दूँ यह मुद्रा हिन्दी-काव्य-परम्परा की एक विशिष्ट मुद्रा है, जिसे समय-समय पर हमारे बड़े-बड़े कवियों ने अपनाया है। **जायसी** कहते हैं:

कवि के जीव खरम हरवानी।
एक दिसि आग दुसर दिसि पानी।

और **कबीर** तो फक्कड़ों और अक्खड़ों के बादशाह हैं:

मोह छँटा, माया कटी, मनवा बेपरवाह,
जिनको कछू न चाहिए, सोही शाहनशाह।
"हमन को इश्क मस्ताना, हमन दुनिया से यारी क्या।"

और वे अपनी अक्खड़ी अन्दाज में राम को सीधी चुनौती देते हैं:

जो कबीर काशी मरे तो रामहि कौन निहोर।

मीरा ने अपने गिरिधर गोपाल से लगन लगा ली है और इसकी परवाह नहीं की कि राजघराने के लोग क्या कहेंगे, क्या करेंगे।

मीरा प्रभु लगन लगी, होनी हो सो होहि।

यह फक्कड़ है। मीरा प्रभु लगन लगी होनी हो सो होहि। और **तुलसी** अपनी लगन में क्या कम खतरे उठाने को तैयार हैं:

बने तो रघुपति से बने, कै बिगड़े भरपूर।
तुलसी बने जो आन पै ता बिगड़े पै धूर।

और उनकी इन पंक्तियों से कौन अपरिचित है -

धूत कहो, अवधूत कहो, रजपूत कहो, जुलहा कहो कोई।
माँगि के खइबो, मसीद में सोइबो, लेइबे को एक न देइबे को दोई।

मन्दिर में लोग सोने नहीं देते होंगे तो मस्जिद में जा के सो गए। ये फक्कड़ हैं। और उसी तरह **भारतेन्दु** की इस मुद्रा को देखिए:

सूधिन सौं सूधे, महाबांके हम बांकेन सौं,
हरिचन्द नगर दामाद अभिमानी कों।

यह उसी मस्ती और दीवानगी की मुद्रा है जिसे अपनी तरह से अपनाकर मैंने जीवन संघर्ष किया, और आप कहना चाहें, तो कह सकते हैं, यह मेरा सन्देश है। आपने यह भी पूछा है कि क्या सन्देश देना कवि के लिए अनिवार्य है? मैं इसका उत्तर इस प्रकार दूँगा कि कवि सन्देश न भी दे तो उसके सृजन से कोई स्थापना उभरती है, जिसे आप अगर चाहें तो उसका **सन्देश** कह सकते हैं।

प्र०: जैसा अभी आपने कहा कि अनेक कवियों ने इसी मुद्रा में जिसको आपने अक्खड़पन की मुद्रा कहा है, अपने सन्देश दिए हैं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपको संसार के किन मनीषी विचारकों ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, और उनका प्रभाव आपकी किन कृतियों में लक्षित किया जा सकता है?

उ०: मैंने पूर्वी-पश्चिमी दार्शनिकों को काफी पढ़ा है। **बी०ए० में दर्शन** मेरा एक विषय था। पर कविकर्म अपनाने पर मुझे ऐसा लगा कि मुझे दर्शन को भुला देना चाहिए और जो सीखना है जीवन के अनुभवों से सीखना चाहिए:

मैं सीख रहा हूँ सीखा ज्ञान भुलाना।

पर मुझे ही क्या, मेरे सारे युग को ही **महात्मा गाँधी** ने सबसे अधिक प्रभावित किया। शायद उनके विचारों से अधिक मैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। और मेरा फक्कड़ाना व्यक्तित्व बनाने में महात्मा गाँधी ने निश्चय कोई भूमिका अदा की होगी।

मैंने अपने मस्त और दीवाने का जो रूप खड़ा किया है, उसमें झाँकने का अगर आप प्रयत्न करेंगे तो उसमें कभी-कभी आपको गाँधीजी की झलक दिखाई देगी। अपनी आत्मकथा को **'सत्य का प्रयोग'** नाम देकर उन्होंने बहुतों को जीवन के साथ प्रयोग करने की प्रेरणा दी। उनके युग में उनसे अधिक आज़ादी से जीने वाला कौन था, निर्भीक कौन था, आत्मविश्वासी कौन था, खतरे उठाने को कौन उनसे ज्यादा तैयार था और कौन उनसे अधिक स्वाभिमानी था?

यह महान् दृश्य है, चल रहा मनुष्य है,
अश्रु श्वेद रक्त से लथपथ लथपथ लथपथ
अग्निपथ अग्निपथ अग्निपथ।

और इस मनुष्य के रूप में, मैं सबसे पहले महात्मा गाँधी को देखता हूँ।

प्र०: इससे लगा कि महात्मा गाँधी ने बहुत अधिक आपको प्रभावित किया। लेकिन आपकी काव्य-कृतियों में जो रचनाएँ, मैं जानना चाहता हूँ सबसे अधिक प्रिय कौन-सी रचना लगती है? और आप किस कृति को अपनी प्रतिनिधि रचना मानना चाहेंगे? प्रतिनिधि शब्द से स्पष्ट है कि एक रचना ही प्रतिनिधि हो सकती है। इस विषय में जरा अपने विचार स्पष्ट करें?

उ०: यह बताना मेरे लिए उतना ही मुश्किल है जितना किसी पिता के लिए कि उसके पुत्रों में कौन उसे सबसे प्रिय है। मैंने अपनी सम्पूर्ण **रचना** को अपना **वाङ्मय शरीर** कहा है। आप शरीर के किस अंग को सारे शरीर का प्रतिनिधि कहेंगे? मैं समझता हूँ मैंने आपके सवाल का जवाब दे दिया है। नाक को कहो, कान को कहो, सारे शरीर का रिप्रेजेंटेशन होता है। नहीं होता?

प्र०: अब एक प्रश्न जो मैं पूछ रहा हूँ जरा विवादास्पद है, और वह आपकी भाषा के संबंध में है। आपकी काव्य-भाषा के विषय में यह एक आम धारणा है कि आपने हिन्दी कविता को **छायावाद** युग में नई भंगिमा प्रदान की थी। इस भंगिमा को कुछ आलोचक आपका **छायावाद** के प्रति विद्रोह भी कहते हैं। क्या आप भाषा-प्रयोग के समय इस प्रकार की विद्रोही भावना रखेंगे? क्योंकि आपकी विषयवस्तु और भाषा-शैली को देखकर कुछ समीक्षक आपको सरस्वती के मन्दिर को अपवित्र करने वाला और हिन्दी कविता की गंगा को गन्दा करने वाला भी कहने लगे थे। ये जो शब्द हैं इससे कुछ विद्रोह की भावना लोगों ने मान ली है। क्या आप इसे स्वीकार करते हैं?

उ०: मैंने **छायावाद** की भाषा के प्रति न तो विद्रोह किया और न मैंने कभी ऐसा कहा। पर मैंने यह जरूर समझा कि मुझे जो कहना है उसके लिए न तो द्विवेदी युगी भाषा मेरे काम आ सकेगी और न छायावादी युगी भाषा। मेरे भाव-विचारों की नवीनता, मौलिकता ने एक भिन्न प्रकार की अभिव्यक्ति ली। यह जरूर कहा जा सकता है। मेरा अपना विचार है कि मेरे सृजन में भाषा-चेतना उतनी नहीं है, जितनी भाव-चेतना। भाषा, भावों के अनुरूप ढलती चली गई है। भाषा-चेतना हमारे अन्दर आप बिलकुल ही नहीं पाएँगे।

प्र०: आपके काव्य में , जो नया मोड़ भाषा को दिया गया है, वह सब मानते, सब स्वीकार करते हैं कि बच्चन ने सहज-सरल भाषा का बोध हिन्दी को दिया।

उ०: जब तक मेरे भावों को नहीं समझेंगे, वे मेरी भाषा को नहीं समझ सकते।

प्र०: भाव को समझ के ही भाषा की प्रशंसा करते हैं। खैर, अगला प्रश्न यह है कि आपकी काव्य-यात्रा में जो मोड़ आए हैं, पड़ाव आए हैं, उन्हें आप किस प्रकार निर्दिष्ट करना चाहेंगे? प्रारम्भिक कविताओं में नैराश्य और कुण्ठा के भी धूमिल स्वर थे, किंतु बाद में आशा, उमंग, उत्साह और जागृति में वे परिवर्तित होते चले गए। इस परिवर्तन की प्रक्रिया के पीछे कौन-कौन से प्रेरक तत्व काम करते रहे हैं ? इसका कुछ निर्देश कर सकें तो श्रोताओं को कुछ लाभ होगा।

उ०: मेरी कविता के मोड़, मेरे जीवन के मोड़ के साथ जुड़े हैं। जो मेरी जीवन-यात्रा से परिचित हैं, वे सहज ही मेरी निराशा-कुण्ठा अथवा मेरी आशा-उमंग को मेरे जीवन के उतार–चढ़ाव में व्याख्यायित कर सकेंगे।

प्र०: क्या आप कवि को प्रतिबद्ध रचनाकार मानते हैं? यदि हाँ, तो कवि की प्रतिबद्धता किसके साथ होनी चाहिए? और आपकी प्रतिबद्धता यदि है, तो कहाँ है?

उ०: मैं जीवन की सम्पूर्ण अनुभूतियों के साथ प्रतिबद्ध हूँ। और मैं समझता हूँ कि कवि की प्रतिबद्धता जीवन के साथ होनी चाहिए। अब एक बात और है, कवि की सामर्थ्य और सीमा के अनुसार जीवन के किसी एक या विशेष पक्ष के साथ उसकी प्रतिबद्धता को भी मैं महत्व दूँगा और उसे समझने का प्रयत्न करूँगा।

प्र०: जीवन में आपने समाज को भी समेटा होगा, क्योंकि जीवन और समाज अलग नहीं हैं।

उ०: हूँ।

प्र०: सामाजिक प्रतिबद्धता पर आजकल बल दिया जाता है, इसलिए प्रश्न मैंने किया था। समाज के प्रति प्रतिबद्धता आपके अन्दर है या नहीं?

उ०: मैंने इसमें बता दिया। अगर आप अपनी सीमा-सामर्थ्य में किसी विशेष पक्ष के साथ अपनी प्रतिबद्धता कर लें तो मैं उसको समझने का प्रयत्न करूँगा।

प्र०: अच्छा, आपने पौराणिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों पर आधृत कविता नहीं लिखी। आपकी कविता में मिथक प्रयोग भी अति न्यून मात्रा में हैं। **द्विवेदी - युग** और **छायावादी - युग** में पुराण और इतिहास के प्रति बहुत गहरा मोह था। आप देखते हैं गुप्तजी के तमाम काव्यों में **रामायण** है, **महाभारत** है। आप उस मोह से कैसे अछूते बने रहे ? कोई पौराणिक आख्यान आपने ग्रहण नहीं किया, मिथक आपने प्रयोग नहीं किया, यह क्या कारण है?

उ०: पौराणिक अथवा ऐतिहासिक सन्दर्भों एवं मिथकों को काव्य का विषय बनाने का औचित्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब उनके द्वारा किसी युगीन या शाश्वत सत्य को संकेतित किया जा सके।

प्र०: शाश्वत सत्य तो आपके पास भी हैं।

उ०: अगर उनके द्वारा किया जा सके। सिर्फ उनको, वर्णन करने के लिए नहीं लिखा जा सकता। मुझे जो कहना था उसकी सच्चाई या झूठ मैं अपने ऊपर प्रयोग करके देखना चाहता था। इस कारण मुझे मिथकों का सहारा नहीं लेना पड़ा। फिर भी मेरी एकाधिक कृतियाँ हैं जिनमें मिथकों का प्रयोग किया गया है। जैसे... **हनुमान**, मेरे काव्य संग्रह **दो चट्टानों** में मिलते हैं।

प्र०: एक पुराना प्रश्न है जो कि जान लेना आवश्यक हो जाता है। आपकी कविता बताती है कि आप कवि कर्म में **भाव पक्ष** को ही प्रधानता देते हैं। लेकिन कला, कला के लिए, ऐसी पुरानी मान्यता भी है। उसके लिए क्या विचार रखते हैं ?

उ०: मैं भावपक्ष को प्रमुख मानता हूँ। कविता में कला पक्ष का महत्व सिर्फ इतने तक सीमित होना चाहिए, कि वह पाठक या श्रोता को उसी अनुभूति में भिगा या डूबा सके जिसमें स्वयं कवि भीगा या डूबा है। वचन प्रवीणता का प्रदर्शन कविता नहीं है। काव्य कला की परिभाषा मैं यों करना चाहूँगा - "शब्दों का वह कौशल जिसके द्वारा कवि का भाव, पाठक या श्रोता को परिपूर्णता से उद्बोधित किया जा सके। कौशल में छन्द, अलंकार, शब्द - योजना, प्रतीक आदि की सहायता ली जा सकती है", पर मुख्य लक्ष्य होना चाहिए शब्दों के द्वारा भावों - विचारों का सम्प्रेषण उससे बढ़कर उद्बोधन यानी जिसे अंग्रेजी में कहते हैं ईवोकेशन।

प्र०: आपके अपने जीवन में जो पीड़ाजनक अनुभव हुए हैं, उन्हें कविता का विषय बनाना आपको रुचिकर लगा है, यह आपकी तीन-चार कृतियाँ बताती हैं। किन रचनाओं में इस प्रकार के अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक है, क्या इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

उ०: जीवन की तीव्रतम अनुभूतियाँ स्वयं अभिव्यक्ति माँगती हैं। फिर चाहे वे सुख की हों, चाहे दुःख की। सुख के अनुभवों में भी आप औरों को साझीदार बनाना चाहते हैं और दुःख में भी। तुलसी स्वान्तः सुखाय भी लिखते हैं और **स्वान्तस्तमः शान्तये** भी लिखते हैं। लिखना अपने आप में दूसरों के साथ अपने अनुभवों को शेयर करना है। लिखना स्वयं शेयर करना है। क्योंकि भाषा एक ऐसा मीडियम है कि जिसके द्वारा उस भाषा भाषियों के साथ आप संबद्ध हो जाते हैं। लिखना अपने आप में दूसरों के साथ अपने अनुभव को शेयर करना है, दूसरों तक पहुँचाना है। सुख में लिखकर आप अपने सुख की अभिवृद्धि करते हैं और दुःख में लिखकर आप अपने दुःख को भुलाते या कम करते हैं। हमें जीवन में दोनों की आवश्यकता होती है। आप **निशा निमन्त्रण** को पीड़ाजनक अनुभवों की अभिव्यक्ति और **सतरंगिणी** को सुखकर अनुभवों की अभिव्यक्ति मान सकते हैं। पर जीवन में सुख - दुःख इतने अलग नहीं जितने अलग - अलग देखने में, अलग-अलग दरबों में बन्द कर दिये जाएँ। ये प्रायः मिले-जुले हैं और सही जीवन-दृष्टि यही है कि उन्हें साथ-साथ देखा जाए।

प्र०: हाँ, लेकिन रचनाओं में अलग-अलग भी हो गए हैं ऐसा लगा जैसे कि दो नाम आपने लिए **निशा निमन्त्रण** और **सतरंगिणी**, यह जो इस तरह के सुख-दुःख की अनुभूति को स्पष्ट करते हैं। क्या आप कवि के लिए किसी निर्धारित आचार-संहिता, कोड आफ कंडक्ट, की आवश्यकता स्वीकार करते हैं? यदि हाँ तो वह कौन–सी आचार-संहिता है? कृपया स्पष्ट निर्देश करें।

उ०: बिल्कुल नहीं स्वीकार करता। मैं कवि के लिए किसी निर्धारित **आचार-संहिता** की आवश्यकता स्वीकार नहीं करता और कवि की स्वतन्त्रता पुरास्वीकृत है। आपने संस्कृत की ये पंक्तियाँ सुनी होंगी – **निरंकुशाः कवयः । कवयः किं न जल्पन्ति** आचार संहिताएँ समाज को व्यवस्थित रूप से चलाए जाने के लिए बनाई जाती हैं। प्रायः होता यह है कि समाज तो बदल जाता है, उसकी आवश्यकताएँ बदल जाती हैं पर उसकी आचार-संहिताएँ रूढ़ हो जाती हैं और समाज को लाभ पहुँचाने की जगह पर उसे हानि पहुँचाती हैं। कवि समाज को या सामाजिक जीवन को किसी रूढ़ि में बँधकर नहीं देखता। यह जीवन को उसकी स्वाभाविक गति में देखता है और उसे वाणी देता है। प्रायः वह सड़ी-गली व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोही और क्रांतिकारी होता है।

एक बात और कहना चाहता हूँ, कवि पर अंकुश लग भी नहीं सकता। वह अपनी शब्द-शक्ति का इतना विश्वासी होता है कि अंकुश लगने पर भी, वह अपनी बात जब कहना चाहता है, उसे कहने की तरकीब निकाल लेता है। हम शब्द-सामर्थ्य को सीमित करके न देखें। सबल और सशक्त कवि, शब्द-शक्ति के ऐसे न जाने कितने स्त्रोतों की खोज कर लेता है जो साधारण लोगों की

समझ में नहीं आ सकते। मैं कवि के ऊपर केवल सुरुचि का अंकुश लगाकर उसे पूरी तरह स्वतन्त्र कर दूँ। किसी बड़े विद्वान ने कहा है - नथिंग इविल कैन बी कन्वेड थ्रू म्यूजिक।" मैं यही बात कविता के विषय में भी कहना चाहूँगा। कविता के द्वारा कुछ भी अशोभन नहीं कहा जा सकता।

प्र०: बहुत बड़ी बात है।

उ०: बीसों उदाहरण दिए जा सकते हैं जहाँ कवियों ने समय स्वीकृत आचार-संहिता का उल्लंघन किया है। पर जीवन के **सत्य, सौन्दर्य** और **शिवत्व** को उद्घाटित किया है। सत्य कभी-कभी कटु और सौन्दर्य कभी-कभी लज्जास्पद भी हो सकता है।

प्र०: नहीं, जैसा कहा आपने "कोड ऑफ कंडक्ट के अन्दर वह भी आता है, शिवेतरक्षतये कहते हैं। कांता सम्मिततया उपदेश कहते हैं। वह भी कोड ऑफ कंडक्ट है कवि का और आपने शिव को स्वीकार भी...

उ०: बिल्कुल।

प्र: कि शिव के बिना काव्य जो है यह शोभन नहीं होगा। अब यह बतलाने की कृपा करें..।

उ०: एक बात और।मैं इस स्थिति को भी स्वीकार कर लूँगा कि कवि को अपनी इतनी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि अगर वह चाहे तो अपने को बंधनों में भी रख सके। उसकी आजादी का हिस्सा है, अगर उसके मन में बंधन स्वीकार करना है, यह इसकी आजादी का हिस्सा है। अंत में मैं इस स्थिति को भी स्वीकार कर लूँगा कि कवि को इतनी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह चाहे तो अपने को बंधनों में भी रख सके, पर अपनी मर्जी से स्वतन्त्र। अपने मन से। ऐसे उदाहरण भी हैं जब कवियों ने स्वेच्छया किसी आचार-संहिता को स्वीकार कर के उच्चकोटि के काव्य को जन्म दिया है।

प्र०: अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि कवि-कर्म के अतिरिक्त आपकी रुचि के अन्य विषय क्या हैं? क्या उन विषयों का प्रभाव आपकी रचना धर्मिता पर पड़ा है?

उ०: मेरे जीवन का बहुत बड़ा भाग पढ़ने और पढ़ाने में व्यतीत हुआ है। दस वर्ष विदेश मंत्रालय में रह कर मैंने राजनीति संबंधी कागज-पत्रों का अनुवाद किया। जीविकोपार्जन संबंधी कामों में मुझे इतना समय लगाना पड़ा कि मुझे अपनी और रुचियों को विकसित करने का समय नहीं मिला। **संगीत** और **चित्रकला** में भी मेरी रुचि रही है। पर न तो इनमें कोई उपलब्धि कर सका और न इनका पारखी ही बन सका। अजीबोगरीब शक्लों के पत्थरों को इक्ट्ठा करने की भी मेरी रुचि रही है और किसी समय मेरे पास उनका अच्छा संग्रह था। ऐसी रुचि कई बड़े लोगों की रही है, डॉ० जाकिर हुसैन की भी। और एक बार उन्होंने मुझे अपना संग्रह दिखाया था। जर्मनी

में वाइमर जाने पर गेटे का घर देखने पर मुझे यह बताया गया कि गेटे को भी ऐसे पत्थर इक्ट्ठा करने का शौक था। इनका एक संग्रह उनके घर में सुरक्षित रखा गया है।

यह एक प्रकार से जड़ में चेतन की निशानी देखने की प्रवृत्ति है। कविता जैसा कि मैंने कहा सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। तो इन कामों का, कोई असर मेरे अस्तित्व पर पड़ा है तो निश्चय उनका कोई न कोई प्रभाव मेरे काव्य पर पड़ा होगा।

प्र०: **चट्टान** जो है कविता, शायद उस पर पड़ा हो।

उ०: हो सकता है।

प्र०: क्योंकि चट्टान तो पत्थर ही हैं और क्या हैं।

उ०: मैंने बहुत-सी चट्टानें ढूँढीं, इस बात का अनुभव करने के लिए कि सिसीफर को क्या अनुभव हुआ होगा, मैंने बहुत-सी चट्टानें ढूँढ़ीं।

प्र०: यह भी एक अनुभव है। आयु की प्रौढ़ि पर आपने कुछ कविताएँ जीवन-दर्शन को स्पष्ट करने के निमित्त लिखी हैं क्या? अभी **हंसा** को लेकर कविताएँ लिख रहे हैं। कविताएँ कई निकल चुकी हैं उनमें अच्छा दर्शन-सा उठता है। उन कविताओं में आपका स्वर संत कवियों जैसा है। कुछ-कुछ **निर्गुण कवियों** जैसा वास्तव में यह स्वर **मधुशाला, मधुबाला, निशा निमंत्रण, एकांत संगीत** के मेल में नहीं है। इस स्वर-परिवर्तन के पीछे क्या प्रमुख कारण रहे?

उ०: अगर मेरी इधर की कविताओं में आपको कुछ दार्शनिक विचार दिखाई देते हैं तो वे मेरे जीवन की अनुभूतियों से उद्भूत हैं। किसी प्रकार का दर्शन, व्यवस्थित दर्शन देने की न तो मेरी योजना है और न मेरी कोई ऐसी महत्वाकांक्षा। अवस्था के साथ अनुभूतियों के रूप-रंग में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। उनको सहज स्वीकारते हुए, मेरे लेखन-सृजन में उनका प्रतिबिम्बित होना भी उतना ही सहज–स्वाभाविक है।

प्र०: आपने अपनी **आत्मकथा** को तीन खंडों में व्यक्त करके गद्य में लिखा है। इन संस्मरणों का गद्य अत्यधिक प्रभावकारी होने के साथ सम्प्रेषणीय बन गया है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि गद्य की सम्प्रेषणीयता तो आपके पद्य से अधिक मालूम पड़ती है। तो अब आप गद्य क्यों नहीं लिखते? आपने संस्मरण लिखे, निबंध भी लिखे उधर आपका ध्यान कम गया है।

उ०: मैंने कभी भी प्रयत्नतः अपने को पद्य या गद्य लिखने को नियोजित नहीं किया। मेरी सृजन प्रवृत्ति अब भी मुझे कुछ कविताएँ लिखने को प्रेरित करती है। अगर कभी गद्य में लिखने की कुछ प्रेरणा हुई तो गद्य न लिखने की मैंने कोई कसम तो नहीं खाई है।

प्र०: नहीं। लिख सकते हैं। जो लिखा है वह बहुत उत्कृष्ट कोटि का है। इसलिए इसके प्रति लोगों का भाव... ।

उ०: अगर मुझे मालूम हुआ कि मेरे अन्दर कोई भाव-विचार ऐसा है जो गद्य में लिखा जा सकता है, तो मैं अवश्य ही लिखूँगा।

प्र०: यही माँग है। एक प्रश्न आपसे नहीं पूछना चाहिए लेकिन पूछ रहा हूँ। आपकी रचनावली पिछले दिनों प्रकाशित हुई थी। इस महार्घ, अत्यंत कीमती रचनावली को सामान्य पाठक खरीद कर नहीं पढ़ सकता। आपने अपनी रचनावली के इस पक्ष को ओझल क्यों कर दिया? आपके पाठक तो अनन्त हैं और वे सब इस स्थिति में नहीं हैं खरीद सकें। आप प्रकाशक पर इतना दायित्व डाल सकते हैं। किन्तु रचनाकार तो आप हैं क्या आप इस विषय में कोई परामर्श प्रकाशक को नहीं दे सकते थे?

उ०: भई देखो, केवल मेरी रचनावली तो प्रकाशित हुई नहीं और रचनावलियाँ भी प्रायः इतनी मँहगी हैं जितनी मेरी। फिर पाठकों तक पहुँचाने का दायित्व मेरा ही क्यों, समझा जाए? प्रकाशन संबंधी सारी सामग्रियाँ मँहगी हैं। रचनावलियाँ तो मँहगी होंगी ही। व्यक्तिगत रूप से उन्हें खरीदना सामान्य जनता के लिए संभव न होगा। पर पुस्तकालयों में उन्हें रखा जा सकता है। दूसरी बात, पाठक किसी लेखक की सभी कृतियाँ शायद ही पढ़ना चाहेगा। सब लोग अपनी-अपनी कुछ प्रिय कृतियाँ बना लेते हैं।

प्र०: नहीं, **रचनावली** भी लेना चाहते हैं हम।

उ०: मतलब यह कि पूरी अगर आप लेना चाहें तो लायब्रेरी में है। मगर साधारण पाठक जो हैं वह कोई एक कृति पढ़ता है। **तुलसीदास** की सब रचनाएँ कौन पढ़ता है?

प्र०: बच्चन जी, बीसवीं शताब्दी में हिन्दी की कविता में भाषा, भाव, वस्तु आदि में जो परिवर्तन आए हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए यह बताने की कृपा करें कि आप किस काल की कविता को सर्वाधिक प्राणवान और समाजोन्मुख पाते हैं। दोनों शब्दों पर विचार कीजिए-**प्राणवान** भी, **समाजोन्मुख** भी।

उ०: अब मैं कुछ विवादास्पद बातें कहने जा रहा हूँ। मैं तो छायावाद काल के बाद और नई कविता के आगमन से पहले की कविता को ही सर्वाधिक प्राणवान् और समाजोन्मुख मानता हूँ, जिसके प्रमुख कवि के रूप में **दिनकर** को और आप चाहें तो **मुझे** भी रख सकते हैं। छायावादी काव्य निश्चय प्राणवान् तो है, पर समाजोन्मुख उसे किसी हालत में नहीं कहा जा सकता। उसे यत्किंचित जीवित रखने का श्रेय कालेजों और यूनिवर्सिटियों के पाठ्यक्रम को है, यानी आपको है। समाज ने न तो उसे अपनाया है और न उससे प्रेरणा ली है। समाज, अगर कोई आंकड़ा हो तो मैं यह जानना चाहूँगा कि व्यक्तिगत रूप से छायावादी साहित्य कितने और कौन लोग खरीदते, संजोते या पढ़ते हैं ? इनमें से हिन्दी के अध्यापकों और विद्यार्थियों को नहीं रखूँगा।

नई कविता तो और सीमित सर्किल तक फिर-फिर कर रह गई है। नई कविता के सैंकड़ों संग्रहों में उनकी संख्या एक हाथ की अंगुलियों पर गिनी जा सकती है जिनके दूसरे या तीसरे संस्करण हुए हैं। **द्विवेदी युगीन** कविता निस्संदेह समाजोन्मुखी थी, पर प्राणवान् बहुत कम थी। उसके प्रमुख कवि **मैथिलीशरण गुप्त** थे जो शिक्षा-संस्थाओं में भी पढ़े गए और समाज ने भी उनको अपनाया। सुधारवादी आन्दोलन के मंद पड़ने के साथ ही उनकी कविता ने अपनी लोकप्रियता खो दी। आज तो किसी पुस्तक की दूकान पर उनकी कृतियों का दर्शन दुर्लभ है।

आप को एक बात और बताऊँ, बहुत व्यक्तिगत बात है **जयद्रथ वध** गुप्तजी का लगा हुआ था इंटरमीडिएट में, और लाखों कॉपियाँ बिकती थीं। **दिनकर जी** की जब **रश्मि रथी** आई तो **जयद्रथ वध** हटा दिया गया और **रश्मि रथी** रखी गई, और **दिनकरजी** और **मैथिलीशरण गुप्त** जी में जो मैं-मैं, तू-तू हुई उसका मैं चश्मदीद हूँ।

प्र०: इसी कृति को लेकर?

उ०: इसी को लेकर। कि मेरी किताब को हटाकर तुमने अपनी किताब लगवा दी।

प्र०: ठीक है। आपने यह जो उत्तर दिया बिलकुल सही है। समाजोन्मुख **छायावादी काव्य** नहीं था, लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि भारतीय साहित्यकार, लेखनी के बल पर जीविकोपार्जन नहीं कर पाते, यह सत्य है। स्वाधीनता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी साहित्यकार की वही स्थिति बनी हुई है। क्या आप भारतीय साहित्यकार को इस विषम स्थिति से उबारने के लिए कोई मार्ग या उपाय बता सकेंगे? आपने पूरी आधी शताब्दी साहित्य - साधना में लगाई है, किन्तु जीविकोपार्जन के लिए और-और काम करने पड़े हैं। यह दैन्य स्थिति किस प्रकार दूर हो, कोई उपाय आपके पास हो तो बताइए?

उ०: है। साहित्यकार का सबसे अधिक शोषण **प्रकाशक** करता है। अगर साहित्यकार और पाठक के बीच से **प्रकाशक** को हटाया जा सके तो साहित्यकार की स्थिति बहुत कुछ सुधर सकती है। मैंने सुना है कि **मलयालम में प्रकाशन का कार्य राइटर्स को-ऑपरेटिव** करने लगी है।

प्र०: पंजाबी में भी होगा।

उ०: और उससे लेखकों की हालत बहुत सुधरी है। यहाँ हमको तो 15%,10% रॉयल्टी मिलती है। ये लोग 30%,35% रॉयल्टी देते हैं **मलयालम** में। क्योंकि बीच का जो शोषक है वह उसमें नहीं है। हिन्दी के जो लेखक अपने प्रकाशक भी बन गए, वह अच्छी खासी हालत में हैं।

प्र०: एक बात आज की कविता के संबंध में पूछनी है। आज की कविता व्यंग्य प्रधान ज्यादा होती जा रही है। सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियाँ, धार्मिक-रूढ़ियाँ इस कविता में अधिक स्थान पा रही हैं। उनके खंडन के लिए व्यंग्य किया जाता है। क्या यह **शुद्ध कविता** के लिए अच्छा लक्षण है?

उ०: अगर सामाजिक स्थितियाँ कविता को व्यंग्य प्रधान बना रही हैं तो मैं उसे स्वस्थ-प्रवृत्ति ही मानूँगा। पर व्यंग्य भी प्रभावी तब ही होगा जब वह अच्छी कविता के माध्यम से आए। **शुद्ध कविता** जैसी न कोई चीज है, न हो सकती है, और न होनी चाहिए। अगर व्यक्ति समाज निरपेक्ष शुद्ध कविता का कोई नमूना मेरे सामने पेश करे तो मैं फूटी आँख भी उसे देखना न चाहूँगा।

प्र०: शुद्ध कविता शब्द का अर्थ आप क्या ले रहे हैं?

उ०: आपने किस अर्थ से कहा है?

प्र०: शुद्ध कविता जिसमें कि भाव वस्तु विषय ...

उ०: मगर किसको लेकर ?

प्र०: समाज।

उ०: व्यक्ति और समाज को लेकर न? वही तो मैं कह रहा हूँ। अगर समाज की स्थिति व्यंग्य चाहती है तो वह अच्छा है। मगर अच्छी भाषा और अच्छे तरीके से कहा जाए। क्योंकि यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि कविता की कला तो वही है जो आपके भावों और विचारों को पाठक तक पहुँचा सके, वही कला है, उतनी ही कला है। और व्यंग्य अगर आपको हँसा के छोड़ दे, मैं उसको अच्छा व्यंग्य नहीं समझता।

प्र०: एक प्रश्न समाज के संबंध में है। वर्तमान समाज के ढाँचे से सभी वर्ग असन्तुष्ट हैं। सभी नई समाज-रचना की बात करते हैं। क्या साहित्यकार इस नए समाज की रचना में कोई महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है? विशेषतः कवि की भूमिका क्या होगी?

उ०: इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व हमें सोचना पड़ेगा कि किसी समाज का ढाँचा कब बदलता है। जब उसे बदलने के लिए समाज के अधिकांश लोग कृतसंकल्प होते हैं। अगर समाज सुशिक्षित हो और युगीन साहित्य से प्रेरणा लेने वाला हो, तो साहित्यकार परिवर्तन की इस मनोवृत्ति को उद्‌बुद्ध, जागृत, उत्प्रेरित कर सकता है। हमारी कठिनता यह है कि हमारा समाज अशिक्षित है। साहित्य किसी तरीके से उसकी प्रेरणा का माध्यम नहीं बन सकता। साहित्य किसी राजनीतिक नेता, किसी समाज सुधारक को संभवतः प्रेरित कर सकता है, वह किसी राजनीतिक आन्दोलन या सुधारवादी आन्दोलन के द्वारा समाज में परिवर्तन लाए।

जो बात साहित्यकार के लिए कही गई है, वही कवि के लिए भी कही जा सकती है। मैं इसे शुभ लक्षण मानता हूँ कि पुस्तकों के अलावा साहित्य या काव्य-सम्प्रेषण के अन्य माध्यम भी बहुत तेजी से विकसित हो रहे हैं। इसके साथ ही अशिक्षा की बाधा एक हद तक दूर हो सकेगी। साथ ही कवियों और साहित्यकारों को सोचना पड़ेगा कि सम्प्रेषण के जो अपुस्तकीय

माध्यम खुल रहे हैं, उनको किस प्रकार निखारा जाए कि वे प्रेरक और प्रभावी सिद्ध हो सकें। आप पूछ सकते हैं कि वे माध्यम कौन हैं?

प्र०: अपुस्तकीय जो आपने कहा, क्या मास मीडिया?

उ०: जी हाँ। जैसे मान लीजिए **फिल्म** है, या **रेडियो** है या **टेलीविजन** है अब हमको सोचना है, लेखकों और कवियों को, इनके द्वारा क्या चीज दी जाए, जो कि हम अभी तक पुस्तकों के माध्यम से देते रहे हैं। क्योंकि पढ़ने वाला तो यहाँ है नहीं।

प्र०: अशिक्षा है।

उ०: हाँ तो फिर जो माध्यम खुले हैं, साहित्यकार का काम यह है कि जो माध्यम उसके पास, जनता के पास पहुँचने के खुले हुए हैं, उनको एक्सप्लाइट करे।

प्र०: ठीक़ है। सम्प्रेषण और आसान हो जाता है।

उ०: अब वह क्षणिक मनोविनोद हो के न रह गया है।

प्र०: नहीं वह तो सही है, लेकिन पहुँचने में, अपनी बात पहुँचाने में आसानी हो जाती है।

उ०: हाँ, हाँ।

प्र०: मास मीडिया का प्रयोजन यह है कि वह शिक्षण भी करे, ट्रेनिंग भी दे। जब आप काव्य-क्षेत्र में अवतरित हुए थे, उसके 8-10 वर्ष के भीतर ही **प्रगतिशील कविता** का आन्दोलन प्रारंभ हो गया। **पंत जी** जैसे सुकुमार छायावादी कवि भी उस धारा में बह गए। लेकिन आपने अपनी ज़मीन नहीं छोड़ी। क्या प्रगति तत्व आपको काव्य के लिए उपयोगी प्रतीत नहीं हुआ? लगता है, क्योंकि आपकी रचनाओं में प्रगतिशील, प्रगतिवाद ऐसा कोई तत्व हमें लक्षित नहीं होता।

उ०: एक बात आपको बताऊँ कि प्रगतिशील का जो काम है, वहाँ मुझको ही **प्रगतिशील** माना जाता है, यानी रूस में उन्होंने जो अपना **लोटस पुरस्कार** दिया है, वह मुझको ही दिया है। सोचना पड़ेगा आपको कि क्यों? बहरहाल **प्रगतिशील आन्दोलन** कतिपय सिद्धान्तों से प्रेरित था। और मैं जीवन को उसकी समग्रता में देखने लगा था। वस्तुतः प्रगतिशील आन्दोलन हमारे सामने एक फैशन की तरह आया था। और कविता मेरे लिए जीवन की साँस की तरह थी। प्रायः उनके पैरोकार बौद्धिक और उच्च्य वर्ग से आए थे। जिन्होंने कि शोषित, दलित की पीड़ा किताबों में पढ़ी थी, अपनी **नस-नाड़ी में** नहीं अनुभव की थी। सच्चाई तो यह है कि अभी उनके पास वह भाषा भी न थी, जिससे वे शोषित वर्ग तक पहुँच सकें। इस बात को शायद **पंत जी** ने सबसे पहले अनुभव किया और वह चुपचाप उस आन्दोलन से खिसक आए। छायावादी भाषा से जनवादी साहित्य नहीं तैयार किया जा सकता था। वास्तव में अगर **जनवादी** भाषा किसी के पास थी, तो वह मेरे पास थी। वह भाषा जिसके माध्यम से जनता के साथ संवाद स्थापित किया जा सके।

जहाँ तक मैंने समझा है **दिनकर, नरेन्द्र, अंचल, सुमन,** सभी प्रगतिशीलता की ओर झुके, पर सभी धीरे-धीरे उससे बाहर हो गए, या उसके ही होकर न रहे, और उनकी विशिष्ट उपलब्धियाँ प्रगतिशीलता के बाहर मानी गई। मेरी अब भी यह धारणा है कि जब तक **सर्वहारा वर्ग** का लेखक सामने नहीं आता है, तब तक प्रगतिशील कविता कोई बड़ी उपलब्धि नहीं कर सकती। मराठी में **दलित साहित्य** के प्रतिष्ठित होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि उसके लेखक **सर्वहारा वर्ग** से आए हैं।

प्र०: यह तो ठीक है, हमारे लेखक इस तरह से नहीं थे। हमारे कवि भी ऐसे नहीं थे। अब इसी संबंध में अभी आपने नाम लिया, अपने समकालीनों का, तो मैं पूछना चाहता हूँ कि अपने समकालीन कवियों में आपका सम्पर्क किस कवि के साथ अधिक रहा। **पन्त, नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, अंचल, सुमन** आदि कवियों के साथ आपके संबंध कैसे रहे, कुछ इन संबंधों पर भी प्रकाश डालने की कृपा करें।

उ०: अपने समकालीनों में मेरा सबसे अधिक सम्पर्क **सुमित्रानंदन पन्त** के साथ रहा। जिसमें उनकी कविता से अधिक उनके व्यक्तित्व के प्रति मेरा आर्कषण था। उनके लिए मैं एक ही विशेषण लगाना चाहता हूँ कि वह परफैक्ट जैंट्लमैन थे, **परफैक्ट जैंट्लमैन**। उनके लिए मैंने एक पंक्ति लिखी थी:

सन्तों में सुमधुर कवि,
कविता में सौम्य सन्त।

एक समय हमारे संबंधों में एक दुर्भाग्यपूर्ण कटुता भी आई। पर मैं अपनी पंक्ति में आज भी एक अक्षर बदलना न चाहूँगा।

प्र०: वैसे आपने कहा भी है कि पहली बार जब आपसे उनकी भेंट हुई, आप बहुत छोटे थे।

उ०: उनसे अभिभूत हो गया था न।

प्र०: नहीं, सत्य के लिए कोई न कोई अपनी जान फँसाता ही है। गाँधी जी ने फँसाई थी इस देश में।

उ०: वह ठीक है।

प्र०: अच्छा, कुछ प्रश्न जो हैं, वे अब कुछ वैयक्तिक स्तर के हैं। तो प्रश्न तो मैंने रखे ही हैं, और आपकी इच्छा पर हैं आप उनका उत्तर दें या न..

उ०: आप पूछेंगे तो जो कुछ मेरी समझ में आवेगा, वह मैं दे दूँगा। अब आप उसको स्वीकार कीजिए या न कीजिए।

प्र०: आपका जन्म किस परिवार में हुआ? उसकी परम्परागत मान्यताओं और विश्वासों का आप पर क्या प्रभाव पड़ा? क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति पर कोई न कोई, संस्कार का प्रभाव रहता है।

उ०: संस्कार का प्रभाव तो बहुत पहले ही पड़ जाता है। वह तो आपका जन्म ही जिस परिवार में हुआ, जिस परिवेश में हुआ, वह आपको बना या बिगाड़ देते हैं। एक पंक्ति लिखते हुए यह बात मेरे ध्यान में थी,**'पथभ्रष्ट - हैं कुपथ पर पाँव मेरे आज दुनिया की नजर में।** तो उसमें है कि **पाँव चलने को विवश थे जब विवेकविहीन था मन, आज तो मस्तिष्क दूषित कर चुके पथ के मलिन कण। मैं किसी से क्या करूँ, अच्छे बुरे का भेद भाई। लौटना भी तो कठिन है, चल चुका युग एक जीवन।"** तो यह तो संस्कारों का असर होता ही है।

मेरा जन्म **इलाहाबाद** के निम्न मध्य वर्ग के **सनातनी हिन्दू कायस्थ** परिवार में हुआ। स्वाभाविक है कि उसकी परम्परागत मान्यताओं और विश्वासों का प्रभाव मुझ पर संस्कार के रूप में पड़ा। इनमें कुछ अंध-विश्वास और रूढियाँ थीं जिनका मुझे विरोध करना पड़ा। यह विरोधी प्रवृत्ति भी शायद मुझे पारिवारिक संस्कार के रूप में ही मिली होगी। मेरे परबाबा जिनका नाम मिट्ठूलाल था मैंने ऐसा सुना था कि उनका अर्दली एक मुसलमान था, जो वस्तुतः उनके पिता की रखैल का लड़का था और जिसको वह अपने भाई का दर्जा देते थे। वह जब दौरे पर जाते थे, साथ बैठ कर खाते थे। जो कि उस जमाने के लिए, बिल्कुल अकल्पित चीज है।

प्र०: वैसे बच्चन जी, अभी आपने विजयेन्द्र जी से पूछा था स्कूल के जो अध्यापक थे कॉलेज के आपके काल में भी इस प्रकार के अध्यापक रहे होंगे जैसे कि **अमरनाथ झा** थे। पूरी पीढ़ी को उन्होंने ....।

उ०: नहीं, यह तो यूनिवर्सिटी की बात हुई न, वह आपने नहीं पूछी थी।

प्र०: वही मैं पूछ रहा हूँ कि उस पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया उन्होंने।

उ०: यूनिवर्सिटी में आकर के **बी०ए०** में हमारे अध्यापक कई विषयों के थे। अंग्रेजी में जैसे **डॉ० दस्तूर** थे। उन्होंने मुझमें बहुत रुचि ली और उन्हीं की वजह से, और उन्होंने जो डायरेक्शन दिया, उसी से शायद मुझको फर्स्ट क्लास मिला। तो **डॉ० दस्तूर** का प्रभाव एक तो मेरे पर बहुत रहा। हिन्दी में **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा** थे। दर्शन में **मिस्टर एम०सी०मुखर्जी** थे, अब उनकी मृत्यु हो चुकी है। उस समय मैं कुछ **आर्य समाजी** प्रभाव में था और उनसे बड़ी बहस होती थी।

मगर वे मेरी बहस को बुरा नहीं मानते थे और मुझे ठीक रास्ते पर... तो ये कुछ ऐसे अध्यापक हैं जिनका असर (संभवतः) मेरे ऊपर पड़ा। मगर **अमरनाथ झा** का प्रभाव जब मैं एम०ए० क्लास में आया तब मुझे मालूम हुआ, क्योंकि बी०ए० तो वह पढ़ाते नहीं थे और उनकी बहुत-सी बातें, उनका व्यक्तित्व, उनके रहने-सहने का ढंग, इन सब चीजों ने मेरा ख्याल है कि एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया।

उनके यहाँ जाइए, उन की लायब्रेरी, उनकी मेज, उस पर किताबें वे जब क्लास में आते, तो उनको तो सब लड़कों के नाम याद थे। शायद ही रजिस्टर वह देखते हों, सब लड़कों के नाम पुकार जाते थे। क्लास में उन्होंने देखा कौन लड़का एब्सेंट है और उन्होंने लगा दिया। और अपना लैक्चर शुरू कर दिया। एक मर्तबे देखा उन्होंने और पता लग गया कि कौन नहीं है क्लास में। पता नहीं गिन लेते थे, क्या करते थे। और मेरे ऊपर तो उनकी बड़ी कृपा थी। उन्हीं की वजह से मैं **यूनिवर्सिटी** में आया, लैक्चरर हुआ और उन्हीं के प्रोत्साहन से मैंने अंग्रेजी में **रिसर्च** भी किया। और मैंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मुझे तो हिन्दी वाला समझा जाता था और जब अंग्रेजी में उन्होंने मुझे लिया तो उनका बड़ा विरोध हुआ था कि **बच्चन** तो **हिन्दी वाला** आदमी है, इसे अंग्रेजी में कैसे लाए?

जब मैं **कैम्ब्रिज** से लौटा तो, वह पटना में उस वक्त **पब्लिक सर्विस कमीशन** में थे उन्होंने एक बड़ी पार्टी दी थी और बहुत से लोगों को बुलाया। जब सब चले गए तो मैंने उनसे कहा कि–"आज तो आपने मुझे बड़ा सम्मान दिया।" अपनी तरह के आदमी थे। अपने अहम् को बड़ा पोषित करते थे। उन्होंने जानते हैं क्या कहा?-"बिकॉज यू जस्टिफाइड माइ जजमेंट। आप कैम्ब्रिज से जाकर डॉक्टरेट लाए तो आपने मेरे जजमेंट को जस्टिफाइड किया।"

प्र०: एक बहुत ही बचकाना-सा प्रश्न है, आपके साथ **"बच्चन"** शब्द का प्रयोग कब से प्रारंभ हुआ? यह एक पारिवारिक वत्सलता का द्योतक नाम प्रतीत होता है। आपने इसे कब से कविता के उपनाम की तरह जोड़ लिया? अब यह उपनाम न रहकर के लगता है मुख्य नाम ही बन गया है।

उ०: **बच्चन** उपनाम का प्रयोग मैंने अपनी **प्रथम रचना** के साथ ही शुरू किया, जब मेरा **तेरा हार** निकला था- **1932** में। बच्चन ही उपनाम से निकला था। इस नाम से मेरी **माँ** मुझे पुकारती थी। मेरे समकालीनों ने जो नाम अपनाए थे, वे बड़े गंभीर और साँस्कृतिक **निराला, उग्र, भक्त, नवीन, हृदयेश, अज्ञेय, दिनकर, वियोगी, अंचल, श्रीमुख** आदि। मैं अब सोचता हूँ कि इस वृत्ति के विपरीत मैंने एक घोर घरेलू नाम अपने लिए कैसे चुना। **बच्चन** आज मेरे लिए वह अनुमान करना कठिन है कि किस मनोवृत्ति से मैंने ऐसा किया होगा। पर यह चुनाव मेरे लिए बड़ा सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ। मेरी यत्किंचित रचनाओं ने इस नाम के साथ कुछ विशिष्ट जोड़ा। यह नाम मैंने अपने परिवार को दिया और मेरे बड़े बेटे **अमिताभ बच्चन** ने अपनी कला और अपने आर्कषण और अप्रतिहत व्यक्तित्व से, इस नाम को एक विश्वविश्रुत **लीजेंड** बना दिया। वह **लीजेंड** है। छोटे-छोटे बच्चे जब आ के पूछते हैं-अमिताभ बच्चन, तो मुझे आश्चर्य होता है कि यह क्या है, इनमें क्या है, कैसे जानते हैं ये? तीन-तीन बरस के बच्चे अमिताभ को जानते हैं।

प्र०: जानते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। एक घरेलू प्रश्न है, आपकी पत्नी **श्रीमती तेजी** एक विदुषी महिला हैं। हिन्दी, अंग्रेजी पंजाबी का उन्हें उच्च-स्तरीय ज्ञान है। क्या आपके कृतित्व में कभी

उन्होंने अपने वैदुष्य से सहयोग दिया है? यदि हाँ, तो वह कहाँ और किस रचना में लक्षित किया जा सका है? अवश्य ही कुछ न कुछ तो दिया ही होगा?

उ०: भई, सृजन साझेदारी से नहीं किया जा सकता। भगवान भी सृष्टि में किसी को साथ नहीं लेते। तेजी जी के वैदुष्य को आप कितना ही महत्व दें, अपने कृतित्व में मैं उनके वैदुष्य का कोई भाव नहीं देखता हूँ। यह जरूर है कि अपनी हर कविता या लेख..।

प्र०: और इसमें तो मैंने आपको लिखा भी था। गाँधीजी तो कहते थे कि मेरी लाइफ तो पब्लिक लाइफ, चौराहे की तरह, पब्लिक प्लेटफॉर्म पर जी है मैंने अपनी लाइफ।

उ०: बिलकुल सही है। मैंने एक इंटरव्यू में कहा था, **पंतजी** की एक पंक्ति है- **कवि से रे किस- का क्या दुराव।** मैंने कहा कि अगर मुझको लिखना होता तो मैं लिखता, **कवि का रे किसको क्या दुराव।**

वह जरूर है कि मैं अपनी हर कविता या लेख लिखकर उन्हें सुनाता हूँ और कभी-कभी मैंने उनकी सृजनशील आलोचना का लाभ उठाया है, विशेषकर **शेक्सपीयर** के नाटकों के अनुवाद के समय मैंने उनके सुझावों को पूरा मान दिया है। क्योंकि मेरा जोर नाटकों के मूल पाठ के शुद्ध भावान्तर पर था, और उनका अपना ध्यान शब्दों के उच्चारण - सहज उच्चारण, उनकी नाटकीयता, दर्शकों द्वारा उनकी ग्राह्यता, इस पर भी था। क्योंकि नाटकों की सफलता अंतिम रूप से मंच पर प्रस्तुत किए जाने में ही है और मैं समझता हूँ कि मैंने उससे काफी लाभ उठाया। और अपनी जो कविताएँ और लेख हैं, उनमें तो मैं नहीं समझता कि उनका कोई विशेष योगदान है।

प्र०: नहीं, नाटकों की जो सम्प्रेषणीयता भाषा के स्तर पर है, वहाँ पर तो योगदान आप स्वीकार करेंगे?

उ०: हाँ जरूर।

प्र०: इतना योगदान काफी है। **श्रीमती तेजी जी** के आगमन से आपके अपने जीवन में तथा आपके परिवार में कौन-सा उल्लेखनीय परिवर्तन आया? क्या उस परिवर्तन को आप अपने और अपने परिवार के लिए वरदान स्वरूप मानते हैं?

उ०: तेजी जी के आगमन से मेरे परिवार में सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन आया कि हम परिवार से अलग कर दिए गए। खानपान में स्वतन्त्रता लेने पर ही मेरे खानदानी चाचा लोगों ने हमारे परिवार का बहिष्कार कर दिया था। और अब तो मैंने प्रांत, भाषा, जाति, धर्म सब बंधनों को तोड़कर विवाह कर लिया था। उनकी प्रतिक्रिया प्रत्याशित थी। मेरे अपने परिवार में विधवा माता थीं, छोटे भाई थे, छोटी बहन थी, बस। बहन विवाहित थी और उसे अपनी ससुराल वालों के रीति - रिवाजों, नियमों को मानना था।

छोटे भाई भी विवाहित थे, मुझे बड़े होने का मान देते थे। पर मेरे उदारवादी विचारों को मानने में उनको संकोच होता था। जैसी होती आई है वैसी ही होती चली जानी चाहिए, उसी के वे अनुयायी थे। वे अपने को **शालिग्राम श्रीवास्तव** लिखते थे। जाति नाम हमारे परिवार में नाम के साथ किसी ने नहीं जोड़ा था। पर मेरे स्वच्छन्द विचारों से अपने अलगाव को रेखांकित करने के लिए ही शायद उन्होंने ऐसा किया था। माँ अपनी सत्तर वर्ष की अवस्था में अपरिवर्तनीय थीं, पर अपने नाती को वह अपने साथ रखकर पढ़ाना चाहती थीं। मेरी बड़ी बहन का लड़का। बड़ी बहन की मृत्यु हो गई थी, लड़का हमारे ही साथ था। राम जब विवाह के योग्य हुए, तो माँ निश्चय ही राम के पैतृक परिवार वालों के आग्रह पर, राम को लेकर अलग रहने लगीं। मुझसे संबद्ध होने के कारण, कहीं राम के विवाह में बिरादरी की ओर से अड़चनें न खड़ी हों। जब राम का विवाह हो गया, माँ मेरे साथ आकर रहने लगीं।

इस प्रकार तेजी को लेकर मैंने एक नए परिवार की नींव डाली। परिवार में क्या परिवर्तन आया, हम दो थे और हमारे परिवार में दो लड़के हुए, यही परिवार था। और अब बच्चन परिवार में दो बहुएँ आ गई और छह नाती-नातिनियाँ आ गई। पोते-पोतियाँ। बारह बच्चन अभी तक हैं।

प्र०: परिवार में परिवर्तन तो बहुत आया। बड़ा परिवर्तन आया। कोई **श्रीवास्तव** नहीं है?

उ०: कोई **श्रीवास्तव** नहीं है। अब इस परिवर्तन को आप चाहें तो वरदान कह सकते हैं। मगर यह है कि हमको एक नया परिवार बनाने का एक अवसर मिला। हमने कहा कि अच्छा है तुमने हमें छोड़ दिया तो हमने एक नया परिवार बनाया। "खुद एक बनाते नया संसार हृदय के स्वप्नों के अनुकूल" -उमर खैयाम में है।

प्र०: इसने आपको और उदारमना भी बना दिया, इस स्थिति में।

उ०: जरूर। क्योंकि उनकी बड़ी रूढ़ियाँ थीं। बड़े नियम में वे जकड़े हुए थे। वे उससे निकलना नहीं चाहते थे। जो होता आया है वह होते रहना चाहिए। इससे मैं एकदम अलग हो गया। अब मेरे लिए स्वतन्त्रता है जिसको चाहे मानूँ, जिसको चाहूँ नहीं मानूँ, कोई रोकने वाला नहीं है। जो हमारे खानदानी चाचा लोग हैं उनके परिवार हैं। अगर वे मुझे बुलाते हैं तो मैं शामिल हो जाता हूँ, नहीं बुलाते तो मैं अलग रहता हूँ।

प्र०: वैसे यह उदारमना होना आपका विद्रोह था इन चीजों से या कहीं भीतर पहले ही आपके अन्दर थी यह चीज?

उ०: उदारता, बात यह थी कि जो रूढ़ियाँ चली आ रही थीं। वे मुझे बिलकुल भी मीनिंगलैस मालूम होती थीं। मुझे तो जाति - पाति भी अच्छी नहीं लगती थी। मैं तो पहले आर्यसमाजी हुआ, बहुत-सी बातों को तो उसने काटा। और जब उससे निकला तो फिर एकदम विद्रोह हो गया। फिर मैं किसी

पुरानी चीज में यह नहीं कि यह चूँकि चलता आया है इस वास्ते ठीक है। अब जो हम ठीक समझते हैं वह हम करते हैं। और उसमें बहुत-सी पुरानी चीजें भी हैं। यह बात नहीं कि हमने सभी कुछ नया कर दिया है। मगर अब हमें **स्वतन्त्रता** है। जो कुछ हमने स्वीकार किया है उसे किया है।

प्र०: आपके मित्र-परिवार में कौन-कौन व्यक्ति ऐसे हैं जिनका उल्लेख करना आप आवश्यक समझते हैं इन मित्रों से जिनका प्रभाव आपके कवि कर्म पर भी पड़ा हो, उसका नामोल्लेख अवश्य कीजिए तथा प्रभाव का निर्देश भी करने की कृपा करें। क्योंकि कोई न कोई पारिवारिक या मित्र ऐसा अवश्य होगा जो आपका इस कार्य में सहभागी रहा हो। यह नहीं कि आपको रास्ता बताता हो, लेकिन सहभागी रहा हो?

उ०: अपने प्रमुख मित्रों की चर्चा मैं पहले कर आया हूँ। अपने कवि कर्म पर किसी के प्रभाव की बात ही मुझे असंगत लगती है। सृजन जैसा कि मैंने पहले भी कहा, कि एकाकी और स्वतन्त्र कर्म है। मेरे लेखक मित्र सब अपनी-अपनी रीति से लिखकर अपना विकास कर रहे थे। हम एक दूसरे के प्रशंसक अथवा आलोचक रहे हों। पर प्रभावित हममें कोई एक दूसरे से नहीं था। या हमने कुछ सीखा हो या हमें कुछ सिखाया हो। और हमारी ऐसी उम्र भी नहीं थी। बहुत छोटी उम्र में तो शायद प्रभाव कुछ ग्रहण किया जा सकता है। स्वतन्त्र चिन्तन सबका था।

प्र०: आपने कभी **आत्मकथा** में कुछ ऐसे प्रसंगों का संकेत किया है जो मित्रों की राय में विवादास्पद हैं।

उ०: हूँ।

प्र०: शायद आपके मित्र **पंत जी** भी ऐसे किसी संदर्भ से आपसे रुष्ट भी हो गए थे। क्या इस प्रकार के संदर्भों का औचित्य आप स्वीकार करते हैं? क्या **आत्मकथा** में लिखना आवश्यक था?

उ०: मानता हूँ कि बहुतों को मेरी आत्मकथा से विरोध था। **पंत जी** आत्मकथा में लिखित किसी बात से रुष्ट नहीं थे। रुष्ट तो वह इसलिए थे कि मैंने उनके दो सौ पत्रों को मूल रूप में प्रकाशित कर दिया था। वे उन पत्रों में से कुछ अंशों को प्रकाशित करना नहीं चाहते थे। पर प्रकाशन की अनुमति वे मुझे दे चुके थे और अनुमति-पत्र में उन्होंने कोई ऐसा प्रावधान नहीं रखा था कि प्रकाशन के पूर्व पत्रों को सेंसर करना चाहेंगे। उन्होंने मुझ पर मुकदमा चलाया पर वे हार गए और पत्र-संग्रह उसी रूप में बिकता रहा, जिसमें मैंने उन्हें छपाया। आत्मकथा के कतिपय संदर्भों पर सम्बद्ध व्यक्तियों को आपत्ति थी पर ये घटनाएँ मेरे जीवन में इतने महत्व की थीं कि मैं उन पर आँख नहीं मूँद सकता था। उनकी सच्चाई के अकाट्य सबूत मेरे पास थे। इसलिए उन पर कुछ क्रोध-विरोध व्यक्त कर, वे साध गए। कचहरी में मुझे पेश करने की केवल धमकियाँ थीं। वे अपने पक्ष की कमजोरी को जानते थे।

व्यक्ति संबंधों में जीता है। आत्मकथा संबद्ध व्यक्तियों को लाए बिना नहीं लिखी जा सकती। किसी लेखक ने तो यहाँ तक कहा है कि दूसरों के विषय में लिखने का, **आत्मकथा** सबसे अच्छा माध्यम है।

प्र०: सत्य लिखना हो तो आवश्यक है कि दूसरों के साथ तुलना की जाए।

उ०: नहीं, वैकुअम में तो आदमी नहीं जीता है न। वह तो फिर... ।

प्र०: नहीं मैं पूछ रहा हूँ, कि **पंत जी** से फिर आपके संबंध सुधर गए थे?

उ०: सुधर तो गए थे। मगर इसकी पहल पंत जी ने ही की। और यह तो ग्रेट मैन का चिह्न ही है। मैंने उनको ग्रेट माना है। और वह सारा जो प्रसंग था, यह दूसरे लोगों ने उनको भड़का दिया था। उनका यह काम नहीं था।

प्र०: पंत जी के मन में तो यह बात बैठ भी नहीं सकती। क्योंकि जितने आपसे मधुर संबंध रहे हैं, उनका तो मैं साक्षी हूँ।

उ०: बताया न कि कुछ लोगों ने उनको गलत तरह की राय दे दी और उसमें वह काम कर गए। **ओंकार** से उन्होंने यह कहा था, उन्होंने जा के पूछा कि-"आपने यह क्या किया?" 'आइ हैव कमिटेड स्यूसाइड।'

प्र०: यह उनकी प्रतिक्रिया थी।

उ०: **ओंकार** ने मुझे आ के बताया। मुझे बड़ा अफसोस हुआ। **पंत जी** जब यहाँ बीमार हुए, उनका ऑपरेशन हुआ, मैं तो बॉम्बे में था। **तेजी जी** गई थीं उनको देखने के लिए और जब वह अच्छे हुए तो मेरे घर आए। फिर मैं भी उनके यहाँ गया। मगर पत्र - व्यवहार उन्होंने फिर बंद कर दिया था मेरे साथ।

खैर, तो जो मैं कह रहा था.वह यह बात है कि दूसरों को लिए बिना आत्मकथा नहीं लिखी जा सकती है। लेकिन एक बात मैं बताऊँ कि जो कुछ मैंने दूसरों के बारे में लिखा है वह कलागत-संयम के साथ। मैंने घटनाओं का वर्णन तीसरे भाग में भी किया है, लेकिन पहले भाग और दूसरे भाग में जो मैंने लिखा था, उससे मैंने एक सबक सीखा। घटनाओं का वर्णन मैंने उसी तरह से किया है जिस तरह से थीं। लेकिन मैंने नाम नहीं दिया, और नाम चूँकि नहीं दिया इस वास्ते किसी ने उस पर आपत्ति नहीं उठाई। फिर आत्मकथा लिखने का, नाम में क्यां रखा है। अगर मैं कोई कल्पित नाम दे दूँ तो क्या है, मगर क्यों दूँ?

प्र०: नाम नहीं दिए, लेकिन संकेत तो स्पष्ट होगा?

उ०: बिलकुल।

प्र०: संकेत से सही नाम आ जाता है।

उ०: अभी तो शायद समकालीन लोग हैं। तो शायद जानते ही हैं, सोच सकते हैं। मगर पचास बरस बाद कौन जानेगा?

प्र०: बच्चन जी, तीन दिन तक हम आपसे बात करते रहे हैं, आपके **काव्य** के बारे में, आपके **सोच** के बारे में, आपकी **शैली** के बारे में, अंतिम प्रश्न मैं आपसे करना चाहूँगा और प्रश्न मेरा आपकी एक कविताओं के संग्रह के शीर्षक से ही उठता है। **"मेरी कविताई की आधी सदी"**। ये पचास साल बीतने के बाद अगर आप पीछे मुड़ कर देखें , पचास साल तक आप साहित्य, काव्य-सृजन करते रहे, उसके बाद आज आप को कैसा लगता है? आपने कुछ सोचा होगा। कुछ पाने की आकांक्षा होगी। आज आप क्या सोचते हैं, क्या आप वह पा सके, क्या वह आकांक्षा पूरी हुई या अभी कुछ और है जो रह गया है, कुछ मन में तुष्टि है या कुछ मन में अभाव है? आप कुछ कहना चाहेंगे, अपनी काव्य-यात्रा के बारे में?

उ०: प्रश्न आपने बड़ा टेढ़ा किया है। पचास बरस लिखने के बाद अगर मैं पीछे देखूँ तो पहली बात मैं यह देखना चाहूँगा कि किन कारणों से या किन प्रेरणाओं से मैंने कविता लिखनी आरंभ की। स्वाभाविक है कि मेरे जीवन में कुछ ऐसी अनुभूतियाँ थीं जिनके लिए मैं अपने कर्मो को उत्तरदायी नहीं मानता। कुछ ऐसी परिस्थितियों में पड़ गया था और कुछ मेरा ऐसा व्यक्तित्व हो गया, जिसको बनाने में मेरे माता-पिता, पड़ोसी, भाई-बहन, इन सबका किसी न किसी प्रकार का योग होगा कि मुझको एक बड़ा भावप्रवण प्राणी बना दिया था। और उस भावप्रवण प्राणी के लिए जीवन में कुछ एक अनुभव मेरे ऐसे आ गए कि मुझे लगा कि अगर मैं इनको अभिव्यक्त नहीं करूँगा, तो शायद मैं जी भी न सकूँ। मैं हिन्दी, यानी **हिन्दी भाषा** का बहुत ऋणी हूँ, इस बात से कि इस भाषा ने मुझे एक माध्यम दिया। **अगर यह भाषा मुझे नहीं आई होती तो मैं मर गया होता।**

मैं अपने माता-पिता का, अपने परिवेश का, बड़ा ऋणी इस बात से मानता हूँ कि उन्होंने मुझे एक एक्सप्रेसिव भाषा दी। इस भाषा पर कोई बंधन नहीं था। जैसे **उर्दू** का या **हिन्दी** का या **संस्कृत** का या यह वर्ड या वह वर्ड मेरे मन में आ रहा है, वह सब मैं कहता चला जा रहा हूँ। तो इस परिवेश ने मुझे भाषा दी थी वह मेरे लिए बहुत जरूरी है। आगे चल करके क्योंकि जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि जीवन एक ही तरह का नहीं रहता। जीवन की तो तीव्रतम अनुभूतियाँ हैं वे हमेशा साथ में होती हैं।

आदमी बड़ा होता है अपने जीवन की समस्याएँ जब उसकी हल हो गई, स्वाभाविक है कि वह दुनिया को देखता है, और चूँकि भाषा पर उसका एक अधिकार होता है और जीवन की उन समस्याओं का, उन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया मन में उठती है इस वास्ते उन पर भी लिखने का आदमी का जी चाहता है। और मेरा बहुत कुछ साहित्य जो है, वह ऐसा भी है कि जब मैं

अपनी व्यक्तिगत समस्याओं से ऊपर उठ गया हूँ। मेरी शादी हो गई, लड़के हो गए, अपने-अपने जीवन में व्यस्त हो गए। अब कोई ऐसी चीज तो नहीं होने को है जो हमें उतना विचलित कर सके जो हमें पच्चीस बरस पर करती थी। नहीं हो सकता। अब कोई ऐसा कहे और समझे कि मैं लिखता चला जा रहा हूँ, मेरा ख्याल है कोई बेवकूफ ही कहेगा। एकाध कवि मेरी दृष्टि में ऐसे हैं जो समझते हैं कि हम तो **इटर्नल प्रेमी** हैं बस प्रेम की ही बात लिखेंगे। मैं इटर्नल प्रेमी नहीं हूँ, न हो सकता हूँ।

तो इतने दिनों के बाद मैं जब देखता हूँ तो लगता है कि मेरे पास एक ऐसा वैहिकल था कि जिसके माध्यम से मैं अपनी बातें कह सका। जब मैंने अपनी किताबें छपाई होंगी तो मैंने इतना तो नहीं समझा होगा कि इतनी लोकप्रिय हो जाएँगी। तब तो शायद यह भी हो, भई अगर मुझे मालूम होता कि मेरी किताब **बीस हजार** छपेगी, तो पहले ही **बीस हजार** छपा लेता। **पचास संस्करण** के लिए रुका तो क्यों रहता?

मधुशाला छपी थी तो **एक हजार** छपी थी। जैसे-जैसे मेरी लोकप्रियता बढ़ती गई वैसे मुझे यह कान्फिडेंस भीतर होता गया कि शायद जो बात मैं कह रहा हूँ अपनी बात कहने में मैं अपनी इस तह तक पहुँचा हूँ कि नहीं कि मेरी बात दूसरों की भी बात है? उस समय मुझे यह अनुभूति नहीं थी, और न यह ज्ञान था। यह तो बाद को मैंने सोचा कि जब मेरी कविता लोग इतना पढ़ते हैं और इतना सुनते हैं, तो शायद उनको इसमें कुछ अपनी भी बात मालूम होती है और मैं अपनी बात कहने में शायद उनकी भी बात कह गया हूँ अब वैसे तो जीवन जब तक चलता रहेगा, उसमें अनुभूतियाँ आती ही रहेंगी। और एक बात आपको और बता दूँ कि अब अगर आदमी भाव प्रधान है तो जीवन में, अपने जीवन की बातों पर और संसार में जो कुछ हो रहा है उसकी एक प्रतिक्रिया तो मन में निश्चय होती है और वह इस दर्जे तक अगर पहुँच जाए कि उसको कहना जरूरी हो जाए और कहने की शक्ति भी हो तो आदमी अपने को रोक नहीं सकेगा।

मेरी हालत तो आजकल है वह यही है। मेरे पास एक वैहिकल है। अब मैं पचास वर्ष लिखने के बाद जो कहना चाहूँ वह मैं कह सकता हूँ। आज मेरे पास भाषा है, मैं जो कहना चाहूँ वह कह सकता हूँ। मैं अपनी प्रतिक्रियाओं को देखता हूँ उनमें यदि मैं आविष्ट हूँ, वे प्रतिक्रियाएँ मुझे विवश करती हैं लिखने के लिए तो, तो मैं लिखूँ। मैं पिछले कई वर्षो जैसा कि आपने कहा कि जाल समेटा, मैंने आठ-दस बरस कुछ भी नहीं लिखा, या बहुत कम लिखा। कुछ लिखा क्योंकि रचनावली में कोई 20-25 कविताएँ ऐसी हैं, मगर 20-25 कविताएँ दस बरस में क्या हैं, दस बरस में दस संग्रह मैंने तैयार किए हैं। तो मैंने यह समझा कि कोई ऐसी चीज नहीं मेरे अन्दर हो रही है। अब मुझे कोई यश या पैसा या इसके लिए हमारी कोई आवश्यकता ऐसी नहीं है कि मैं लिखूँ। मगर अगर कोई चीज मुझे **विवश** करती है तो मैं लिख सकता हूँ। और वह मैंने किया है। आज जो मैं लिख रहा हूँ। वह कोई इस वास्ते नहीं है कि उससे मुझे कुछ पैसा मिल जाए, यश कीर्ति मुझे बहुत मिल चुकी। ☐

॥ एकान्त साहित्य साधक : विभूति भूषण मुखोपाध्याय ॥

अपने साहित्य-लेखन के द्वारा विभूति भूषण मुखोपाध्याय ने व्यंग्य और हास्य विषयों को नये रूप में, युग और जीवन के लिये प्रासंगिक बनाया और अपने समस्त लेखन से बंगला तथा अनुवादों के माध्यम से अन्यान्य भाषा साहित्य में भी सम्मानपूर्ण लोकप्रियता अर्जित की।

विभूति बाबू रचित अनेक कृतियों के, विभिन्न भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशित और चर्चित हुए।

अपने एकान्त व्यक्तिगत जीवन में भी आप मानव करुणा की महान् मूर्त्ति बने रहे।

उनकी यह रेडियो आत्म कथा आकाशवाणी के दरभंगा केन्द्र में रिकॉर्ड की गयी। यहाँ प्रस्तुत हैं संपादित कुछ प्रसंग।

भेंटकर्ता हैं : प्रोफेसर पी०एस०सन्याल, अंग्रेजी साहित्य के समालोचक एवं मिथिला विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर।

॥ एकान्त साहित्य साधक : विभूति भूषण मुखोपाध्याय ॥

प्र०: आपको साहित्य-सृजन की प्रेरणा कैसे मिली? आप कुछ बताएँगे ? और अच्छा होता इस सम्बन्ध में आप अपनी सबसे पहली कहानी-छपी हुई पहली कहानी के बारे में कुछ विस्तारपूर्वक कहते। यों मैंने सुना है कि कलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका **प्रवासी** में आपकी पहली कहानी छपी थी। कौन-सी कहानी थी वह?

उ०: साहित्य की प्रेरणा ! यह कब से शुरू होती है यह कहना ज़रा-सा मुश्किल होता है। मैं जब सैकेंड-अंदाजन सैकेंड-क्लास का छात्र था **राज स्कूल** में, उसमें कुछ लिखने की वासना हुई, यों ही। तो एक गल्प, कहानी.. थी एक लड़की को ले कर के। पहले तो आप जानते हैं कि उठती हुई जवानी के समय प्रेमी का भाव जागृत रहता है। यह तो कोई छिपाने की बात नहीं है। तो, यह कोई खास नहीं, यों ही एक लड़की को नायिका बना कर के शुरू किया। लेकिन वह मेरी कहानी.. मन के मुताबिक नहीं हुई। वह तो बड़ा किस्सा है। उसको छोड़िए..। यह शुरू किया था।

प्र०: लेकिन आपकी कहानी छपी **प्रवासी** में?

उ०: इसके बाद, बहुत बाद प्रवासी में निकली। वह किस्सा ऐसे है..

प्र०: कहानी का नाम शायद **'अविचार'** था।

उ०: **'अविचार'**। तो ऐसा हुआ कि जब मैं बी०एन० कॉलेज पटना में थर्ड ईयर का छात्र था, उस समय में **प्रवासी** ने एक प्राइज डिक्लेयर किया, उस जमाने में। आजकल तो प्राइज़ देना बहुत साधारण हो गया है। उस जमाने में, लेकिन नहीं था। तो वो ही मेरा इम्प्रेशन हुआ। एक कहानी लिख कर के भेज दी।

प्र०: अच्छा सुना है कि इसमें आपको द्वितीय पुरस्कार मिला था - सैकेंड प्राइज़।

उ०: नहीं, थर्ड प्राइज़ मिला।

प्र०: और उस प्रतियोगिता में सुनते हैं कि विनर अर्थात् प्रथम पुरस्कार मिला **राजशेखर बोस** यानी **परशुरामजी** को।

उ०: उनको द्वितीय। आते हैं हम उस किस्सा में।

प्र०: उनको द्वितीय मिला। अच्छा तो सुन कर श्रोतागण बहुत खुश होंगे कि दरभंगा ने दो मूर्धन्य साहित्यकार बंगला को दिया। **राजशेखर बोस**, वह भी ह्यूमरिस्ट थे और आपका भी तो हास्य के जगत में काफी नाम है और एक तीसरे **केदारनाथ वाण्ज्ये बैनर्जी** जो वह भी **बिहार** के ही थे।

उ०: उस समय में थे !

प्र०: अब आप यह बताइए कि आपका दरभंगा आना कैसे हुआ? आपके पूर्वज दरभंगा में कैसे आए, इस सम्बन्ध में कुछ सविस्तार बताइए।

उ०: मेरे दादा - यानी ग्रैण्डफादर..! हम लोगों की आदिवास भूमि है श्रीरामपुर चातरा।

प्र०: शायद हुगली जिला में है-श्रीरामपुर चातरा।

उ०: तो जैसे सुना, देखा तो नहीं उनको, जैसे सुना जब 18-19 की उम्र थी तो नौकरी की दृष्टि से वह वहाँ से चल दिये अकेले। अकेले चल दिए करीब-करीब। चल तो अकेले दिये लेकिन मुमकिन है कि उस ज़माने में उन बंगालियों को, बाहर नौकरी मिल जाती थी। आसानी से कुछ पढ़ लेते थे। हमारे दादा उस ज़माने के मैट्रिक तो नहीं, एंट्रेंस थे। तो गए होंगे उसका कोई रिकॉर्ड नहीं है। लेकिन काफी इंटैलीजेंट... । तो तीन सौ माइल आ कर के उस ज़माने में। बड़ा मुश्किल...। रेल और बिजली वगैरह, यह जो हम लोगों को एडवांटेज मिलता है, उस वक्त तो सपना भी नहीं था। उस ज़माने में हावड़ा से ले कर के और हुगली तक ट्रेन की यह मिट्टी गिर रही थी। उस समय में वह चल दिये। उसके बाद वो ही एक बड़ा किस्सा है। तो वो तो सीधे इधर चले आए - दरभंगा। ऐसे ही कभी पैदल कभी नाव, कभी गाड़ी किसी से पूछकर के ऐसे ही वह आए। दरभंगा में नहीं रहे। दरभंगा छोड़ दिए वह। पंडौल में हम लोगों का मुमकिन है, कि कोई जान पहचान उस वक्त आ चुके थे। तो दरभंगा छोड़ कर के वह पंडौल में चले गए। पंडौल में जा कर के वहाँ नील कोठी में उनको नौकरी मिल गई। और जाने-आने की हालत तो इससे आप समझ जाइएगा 18-19 में वह आए थे। 11 बरस के बाद वह लौट गए, शादी के लिए। हमारी दादी को ले कर, फिर पंडौल में पहुँच गए।

प्र०: आपके दादाजी का क्या नाम था?

उ०: मधुसूदन मुखोपाध्याय। आ गए तो इसके बाद वहाँ तरक्की की। बड़े बाबू हो गए। और बहुत मर्यादा के साथ उन्होंने अपनी जिन्दगी बितायी।

प्र०: उसके बाद आपके पिताजी और तब आप?

उ०: मेरे पिताजी। दादा जी के बाद उनको भी उसी में पोस्ट मिल गया। वह रहे।

प्र०: और तब आपकी भी धीरे-धीरे यहाँ पढ़ाई-लिखाई.. ।

उ०: मेरी भी और मेरे पिताजी का भी जन्म उसी जगह में हुआ। मेरा भी जन्म उसी जगह हुआ - पंडौल में ही - जी हाँ।

प्र०: इस बीच आप फिर कभी चातरा भी गए? यहीं रह गए पंडौल में?

उ०: नहीं चातरा नहीं गया। फादर वहीं रह गए। उनको नौकरी हुई।

प्र०: तो आप छुट्टियों में जाते होंगे चातरा वगैरह?

उ०: नहीं उस जमाने में तो मैं बच्चा था। तो चातरा में मेरा आना एक इम्पोर्टेंट इवेंट है लाइफ में। चातरा में अगर हम नहीं आते तो शायद साहित्य की प्रेरणा नहीं मिलती। गोकि उस समय मेरी उमर 9-10 के बीच में थी। क्योंकि बंगाल का जो कल्चर..

प्र०: बंगाल की संस्कृति, प्रकृति तो वहाँ..

उ०: तो वहाँ उसकी तो कुछ पहुँच नहीं थी। तो उसका कुछ हमको मिल गया।

प्र०: कुछ अनुभव आपको ऐसा मिला जो कि शायद नहीं मिलता, और वह अनुभव आपकी साहित्य-रचना में बहुत काम आया।

उ०: साहित्य-रचना में बहुत काम आया।

प्र०: तो इस तरह से आर्थिक सुरक्षा के साथ, दरभंगा का परिवेश आपको अच्छा लगने लगा। आप यहाँ **राज स्कूल** में भर्ती हो गए और धीरे-धीरे आपका मन रम गया और इस प्रकार आप दरभंगा बस गए।

उ०: इसका किस्सा यह हुआ कि नील कोठी हट गयी। सिंथैटिक इंडिगो होने के बाद। महाराज ने उस कोठी को खरीद लिया और वह ज़मींदारी हो गयी।

प्र०: जर्मनी वगैरह से सिंथैटिक प्रौसेस किया हुआ बनने लगा। और तब आपको दरभंगा आना पड़ा नौकरी के लिए।

आपकी रचनाओं में पारिवारिक पृष्ठभूमि की प्रधानता है। और उस समय का जो संयुक्त परिवार होता था जिसे बंगला में हम लोग एकांतवर्ती परिवार कहते हैं, तो उसमें सब लोग साथ रहते थे और उस सपरिवार का जो सबसे अगुआ होता था, कोई जरूरी नहीं कि वह कमाता भी हो लेकिन उसकी बात चलती थी और सब लोग मानते भी थे तो उसमें सबों का भरण-पोषण हो जाता था। तो आपकी कहानियों को पढ़ने से लगता है कि उसमें उस तरह के बहुत, अनेक चरित्र हैं। कुछ जो हैं बहुत दयालु और बहुत-सी विधवाएँ हैं और बाल विवाह की बात है और तरह-तरह

का जो उस समय संयुक्त परिवार के जो विविध पहलू हैं तरह-तरह के जो सम्बन्ध हैं जैसे दादा-दादी और नाना-नानी, नाती-पोता, नन्द भौजाई. विविध सम्बन्धों के बारे में आपकी कहानियों में और उपन्यास में जिक्र है लेकिन सबसे बड़ी बात जो हम उस कहानी में देखते हैं कि बड़ी तटस्थ एक औब्जेक्टिव आपकी दृष्टि है और फिर भी आपने उसको गहराई से भी देखा है। डीपली जा कर भी देखा है और फिर भी आप बायस्ड नहीं हुए हैं। यानी आपमें कोई पूर्वग्रह नहीं है। कोई इस तरह का नहीं है कि व्यंग्यात्मक यह हो। बहुत-से लोग जो हास्य के बारे में लिखते हैं तो वह थोड़ा-सा व्यंग्य हो जाता है। कहीं तीखा स्वर होता है। तो ऐसा किस तरह संभव हुआ कि आपके हास्य में थोड़ा-सा दर्द का स्वर है, कैसे हुआ यह दार्शनिक दृष्टि आपने कैसे पायी? इसके बारे में कुछ बताएँ?

उ०: देखिए आप तो मेरे मकान में गए हुए हैं। तो अभी जो आप मेरा मकान देख रहे हैं उसकी चौहद्दी तो बड़ी है। लेकिन अभी कम आदमी हैं। मैं हूँ, मेरा एक भतीजा है वह रिटायर किया। दो भतीजा एक स्टेट बैंक में है। मेरे एक छोटा भाई, उनकी स्त्री है। यह ही ले कर के मेरा परिवार..., नौकर-चाकर हैं।

उस जमाने में, जिस समय हम राइटिंग शुरू किया था उस जमाने में जो मेरा घर था इसका आइडिया आपको देना मुश्किल है। यानी एक थोड़ी जगह खाली नहीं थी। यहाँ एक पढ़ रहे हैं, यहाँ उससे ज्यादा उम्र के पढ़ रहे हैं। वहाँ उससे जो नौकरी करने वाला... उनकी चाय का यह (प्रबन्ध) हो रहा है। फादर मेरे जीवित हैं और उनका फ्रेंड पाँच सौ आदमी.. उसमें एक चातरा के भी आदमी थे। इन सबसे घर एकदम भरा हुआ था। तो इसका फायदा हमको इतना मिला उसमें कि आप ख्याल कीजिए कि हम तो बराबर बंगाल से दूर रहे एक लड़कपन में थे और दूसरे हम आइ०ए० पास किया था - **सुरेन्द्रनाथ कॉलेज** से पास किया था। यहीं बैठ कर के बंगाल को ज्यादा देखना हुआ। सारा बंगाली सोसायटी की जो संस्कृति जो रहने का रंग-ढंग है, बचपन से ले कर के बूढ़े तक, मेरी दादी भी बची हुई थीं, यहीं उनका इन्तकाल हुआ। ये ले कर के एक बड़ा 91 वर्ष का पूरा जो एडवांटेज हमको मिला। यानी बंगाल लाइफ का, बंगाली सोसायटी का, एक अपने ही घर में. . । दरभंगा में तो बहुत बंगाली हैं। लेकिन अपने घर में ही हमको, बंगाली का रहन-सहन, सब संस्कृति, विद्या यह सब कुछ हमको अपने घर में मिली।

तो इसका एडवांटेज हमको साहित्य में बहुत मिला। इसी वास्ते आप जब देखते हैं तो इसी किस्म का ढब (रूप) सबमें है कि पारिवारिक जीवन की कुछ छाया मिलती है।

प्र०: आपने जब लिखना शुरू किया तो उस समय बंगला साहित्य में जैसे बंकिम चन्द्र चटर्जी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, प्रमथनाथ चौधरी जो वीरवर के नाम से जाने जाते हैं, ये लोग अपनी ख्याति के शिखर पर थे। और यह स्वाभाविक है कि जब आपने लिखना शुरू किया होगा तो आपके सामने कुछ आदर्श रहा होगा। तो आप इन लोगों से कुछ प्रभावित तो हुए होंगे? तब प्रत्यक्ष रूप से हो या प्रच्छन्न रूप से हो सकता है कि उनकी विचारधारा से आप प्रभावित

हुए हों या उनकी कुछ कहानियों की कुछ शैली या कथन-शैली या जिसको टैक्नीक वगैरह कहते हैं - उससे? भले ही आप उनकी जो दृष्टि है, राजनीतिक दृष्टि उससे नहीं सहानुभूति रखते हों वह दूसरी बात है, लेकिन कुछ प्रभाव तो आप पर पड़ा होगा। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि आपकी जो, प्रारम्भिक रचनाएँ हैं **रानू प्रथम** भाग या **रानू द्वितीय** भाग। तो प्रच्छन्न या प्रत्यक्ष प्रभाव आप पर कैसे पड़ा, उसके बारे में..।

उ०: क्योंकि उस एटमॉस्फीयर में तो हमने शुरू किया और वैसे ही लिखते गए तो प्रभाव अगरचे समझें तो हमको सबसे रवीन्द्रनाथ का रहा क्योंकि रवीन्द्रनाथ ऐसे फिगर हैं, जिसमें साहित्य की सब चीज मिलती है।... सोशल, ह्यूमर का भी परफैक्शन हुआ। गो कि बंकिम का भी ह्यूमर था लेकिन परफैक्शन था रवीन्द्रनाथ में। ये सब इन्हीं का प्रभाव हमको बहुत कुछ मिला। लेकिन और जब हमारे साथ लिखते थे उसमें तो केदार बाबू तो बहुत लेट लिखना शुरू किए। तब हम कुछ बढ़ चुके थे। परशुराम भी लेट शुरु किए। तब हम कुछ बढ़ चुके थे। इन लोगों का प्रभाव कुछ पड़ा नहीं। अच्छा और उस जमाने में उस समय **प्रभात मुखोपाध्याय** - उनका प्रभाव हम पर बहुत... उनका भक्त थे। पढ़ते थे.. उसको जो यों कहिए आप प्रच्छन्न प्रभाव भी वह तो जरूर आया है और इसके ज्यादा और एक चीज रही है। उस जमाने में छात्रों में भी इंगलिश राइटिंग का प्रभाव हम पर रहा।

प्र०: विदेशी साहित्य का होगा ही, कोई खास विदेशी लेखक?

उ०: ... **डिकन्स। डिकन्स** अभी तक भी हम पढ़ते हैं। डिकन्स थे। **विक्ट्यर ह्यूगो। विक्ट्र ह्यूगो** का **'ला मिजरेबुल'** हम कई बार पढ़ चुके हैं। गो कि वह ह्यूमर की किताब नहीं है, लेकिन ऑल आस्पेक्ट्स ऑफ लाइफ के बारे में है। और सर्वेटीज जो बड़े-बड़े ह्यूमरिस्ट वहाँ, जेरोम के जेरोम, मार्क ट्वेन, इन लोगों को पढ़ते हैं। पाते हैं तो किताब खरीद कर के पढ़ते हैं। इन लोगों को कुछ प्रभाव नहीं है क्योंकि मेरा एटमॉस्फीयर कुछ ह्यूमर का रहता है।

प्र०: अच्छा, मुनरो या वुड हाउस?

उ०: इसके बारे में एक शब्द कहना है। हमें यह कुछ स्ट्रेंज है.. वुड हाउस या जैकौब की किताब हमको अच्छी नहीं लगती। अच्छी नहीं लगती है माने बहुत दूर तक इंटरेस्ट नहीं ले पाते।

प्र०: (उबाने वाला) रिपीटेटिव - दोहराने वाली बात- तो आपकी प्रथम जो रचनाएँ निकली थीं संकलन के रूप में **रानू प्रथम** भाग या **रानू द्वितीय** भाग उसका जो आमुख प्रीफेस - उसमें आपने कुछ वाक्यों का प्रयोग किया है, जिससे आपका उद्देश्य कहानी लिखने का जाहिर होता है। जैसे पहली पुस्तक में आपने लिखा था कि मट्टी और मन ये दोनों के गीलापन से बंगाली चरित्र बनता है। तो उसमें आपने यह भी लिखा कि वह, मिट्टी का वह गीलापन तो खत्म हो रहा है, तो कम-से-कम

मन का गीलापन तो कुछ रहे। लेकिन वह अधिक अश्रु नहीं रहे। यदि मैं उसमें कुछ राहत दे सकूँ तो मैं समझूँगा कि मैंने कुछ काम किया।

उ०: देखिए इसको आप कुछ सीरियसली.. । भूमिका में जो लिखा है वह कुछ सीरियस बात नहीं है। चीज जो है **आदमी**। तो बंगाल तो कुछ नरम जमीन है ही है, बँगाल, बंगला.. ।

प्र०: यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि एक तरह का आरोप अक्सर लगाया जाता है बंगला साहित्य पर कि अभी भी शरत् बाबू का प्रभाव, भावुकता सैंटीमेंटलिज्म जो है, वह प्रभाव रह गया है, लोग कहते हैं कि विमल मित्र में भी है। वही पूरी भावुकता चली आ रही है। आपने लिखा था कि मैं उससे कुछ उसको हल्का करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

उ०: यह कुछ सीरियसली मत लीजिए इसको, क्योंकि हमारा लेख में कुछ हँसी रहती है, कुछ कॉमिकल इवेंट रहता है। 'ह्यूमरस इवेंट'। इस वास्ते इसको उठाया है। ऐसा नहीं, दिस इज नॉट एम्बीसीयस इन माइ लाइफ एक्जैक्टली।

प्र०: और आपने उसी तरह से दूसरी पुस्तक में भी लिखा था कि समस्या-जर्जरित समाज को मैं कुछ राहत देता हूँ, कुछ रिलीफ देना चाहता हूँ अपनी कहानी के जरिए, कुछ ऐसा भी आपने लिखा था। अच्छा तो आपने थोड़ी देर पहले कहा था कि रवीन्द्रनाथ का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा है। तो रवीन्द्रनाथ यानी जिस तरह से **दो बीघे जमीन** जो कविता उनकी है, दो बीघा जमीन में एक छोटा-सा वाक्य प्रयोग किया था – छोटो प्रान, छोटो व्यथा, छोटो-छोटो दुःख कथा। तो इस तरह का भी कुछ आपके दिमाग में यह रहा होगा। इस तरह की बात कि हम साधारण लोगों के बारे में लिखें उन लोगों के दुख-दर्द के बारे में लिखें। तो यह एक उद्देश्य आपके मन में था? ऐसी कोई बात नहीं, कोई खास निश्चय नहीं था?

उ०: नहीं ऐसी बात नहीं।

प्र०: तो आपने अपने स्वान्तः सुख के लिए लिखा?

उ०: हाँ। पहले इसको क्या कहेंगे, कलम का टैंपरामेंट कहिए जैसा है उसी के मुताबिक हम लिखते थे। एक सही बात आपसे कह देते हैं आपके क्वश्चन में नहीं है। वह यह है कि – ऐसा हुआ है कि छोटी कहानी हमको, हम समझते हैं जहाँ तक, बंगाली लिटरेचर में सबसे बड़ी तादाद में है। कोई साढ़े पाँच सौ हुआ। इस वास्ते इसको कहते हैं इम्पोर्टेन्ट बात, मेरा लिटरेचर में है। यह हमको भी मिस्टीरियस मालूम होता है। वह कह दें – छोटी कहानी माने फुल फ्लैज्ड कहानी। ऐसे तो छोटी कहानी बनफूल की भी है। तो उनसे उनका वह उनके लिखने का जो कायदा है, उससे कोई बढ़ नहीं गया है। और भी लिखी हैं लेकिन हम कहते हैं फुल फ्लैज्ड ऐसा बहुत है। एक तो.. देखते हैं मेरे लिटरेचर में - एज ए क्रिटिक ऑफ माइसैल्फ, आत्मालोचना कर रहे हैं, जब छोटा गल्प हम लिखते हैं तो ह्यूमर आ जाता है। कई-कई पाँच सौ, पौने पाँच सौ, छह

सौ गल्प में ऐसा कम ही गल्प है जो कि सीरियस है, बिल्कुल सीरियस है। चार-पाँच-छह होगा। पाँच सौ में से। और सब हल्का हो जाता है। यह तो छोटी कहानी थी।

प्र०: लेकिन उपन्यास में?

उ०: मेरा 25-30 वॉल्यूम होगा यह बड़ी कहानियों का। यह नॉवल है - 25-30 होगा।

प्र०: तो वह काफी गम्भीर है, सीरियस है उसमें?

उ०: सब। एक दो इसमें दो या तीन ग्रंथ छोड़कर के, सब सीरियस और समाज की समस्या लेकर के। इसमें प्रधान है नारी-समस्या। कुछ है आपका बंगला का **विप्लव वाद्** जिसने हमको बहुत प्रभावित किया। और सब ये लेकर के खासकर के नारी समस्या को लेकर के, हमने ज्यादा कोशिश की है।

प्र०: किस तरह की समस्या? उसकी जो उपेक्षा हुई है?

उ०: देखिए; एक मेरी कहानी का आपको इशारा दे दें नहीं तो नहीं मिलेगा। मेरी एक कहानी थी-**"तुमराइ भरोशा।"**

यह युवकों को लेकर लिखी गई है। यूथ को लेकर। तुमराई - मेरा मतलब है, हम लोग तो, गए हुए हैं।

प्र०: तुम लोगों का अगर उत्थान नहीं हुआ तो यह समाज जो है और डूबेगा।

उ०: तुम लोग अगर ठीक रहोगे तो ये समाज ठीक रहेगा। बड़ी किताब है। वह एक उसमें **आनन्द बाजार** में धारावाहिक रूप से निकल रहा था बहुत पहले। तो उसमें हम उठाया है रूप लेकर के, नारी का जो रूप है इससे स्वर्गीय है। एक इस हिसाब से देखिए। और नहीं, तो नरक का भी रूप है। नरक की तरफ खींचेगा वह आदमी कहलाता है मरद कहलाता है इसे लेकर के... ।

प्र०: मतलब मर्द उसे चाहे तो संवार सकता है नहीं तो नीचे गिरा सकता है। यही विषय है। अच्छा आपने जो पहले कहानियाँ लिखीं। पहला जो कहानी-संग्रह निकला उसके बाद तो काफी अर्से का गैप रहा। बीस–इक्कीस साल का गैप रहा तो वह ऐसा क्यों? उस बीच में आप चुप क्यों रह गए?

उ०: मतलब यह एक इंपोर्टेंट चीज है-आपका क्वश्चन। **पंडौल** से आने के बाद, हमारे फादर अकेले पड़ गये और हम सैकेंड उनका सन है। मेरा भाई का पढ़ना-लिखना ज्यादा दूर तक नहीं हुआ गो कि अपना मेरिट से आखिर तक वो यहां.. सुपरिडेंट होके रिटायर किया था। वह भी उस जमाने में अकेले थे। तो हमारा उनके ऊपर में दायित्व था। तो इसी वास्ते हमको नौकरी में प्रवेश

करना पड़ा। बी०ए० पास करके हम साथ-ही-साथ नौकरी किया और बराबर फोर्टी टू तक हम नौकरी करते ही रहे। राज में ज्यादा करते रहे इंफ्फिरेंट पोर्टफोलियोज में करते रहे।

देखिए मेरा रानु प्रथम भाग हुआ 20-22 में, इसी टाइम में हुआ। तो इसके बाद हम नौकरी में इतना फंसे हुए थे और बाहर भी नौकरी के काम में जाना पड़ता था। इसलिए इतना फंसे हुए थे कि हमको टाइम नहीं मिलता था और आखिर में मेरा नौकरी था **इंडियन नेशन** का मैनेजर। उसमें इतना सख्ती थी इतना रिस्पोंसिबिलिटी थी कि हमको तो सोने का टाइम नहीं मिलता था।

हमारे टाइम में आपका **आर्यावर्त** शुरू हुआ और रोटरी छोटे-छोटे रोटरी से शुरू हुआ। तो हमको तो ये-चांस हुआ कि फोर्टी-टू का जो क्विट इंडिया मूवमेंट हुआ उसमें **इंडियन नेशन** बंद हो गया। बंद हो गया तो हम लोगों को प्रेस के सामने ही ऐसा हमला हुआ.. उस रोज मेरे जीवन में सबसे बड़ी घटना है, आप समझिए कि मेरा सैकेंड लाइफ हमको मिला। मेरे और एडीटर की तरफ बंदूक भी उठाई। सब आदमी मिलकर के तार छीनता है. यह करता है। तो, लेकिन हम लोग महाराज के वहाँ मिलकर के यहाँ चले आए।

प्र०: दरभंगा चले आए?

उ०: दरभंगा चले आए उन्होंने रिकमेंड किया कि आप तत्काल स्टेटमेंट दीजिए और नहीं तो यह मूवमेंट जो है कि ये कोई नहीं जानता कि इंडिपेंडेंस मिलेगा या दारिद्र मिलेगा ! इंडिपेंडेंस नहीं मिलेगा तो यह सरकार आपको ये करेगी.. कौन-सा रास्ता लें। तो यह जो बंद हो गया तो उस समय में शॉक था मेरे वास्ते। हम ही लोग रिकमेंड किया। बगैर किए हुए उपाय नहीं था।

प्र०: अच्छा इधर जो कुछ शुद्ध हास्य की कहानी है प्योर जैसे उसमें चाइल्ड साइक्लोजा बाल मनोविज्ञान का भी कुछ है। जैसे श्रीमान् पृथ्वीराज को लेकर जो है वह बालक या यह सर्टिफिकेट वगैरह में जो आपने एक सिचुएशन दिया है, तो दोनों जो दो स्वर की कहानी है एक में जो है सिचुएशन ह्यूमर है और एक में चाइल्ड साइक्लोजी का बाल मनोविज्ञान का प्रश्न है। दूसरे में दूसरी स्थिति का है तो इन दोनों कहानियों के पीछे कुछ असलियत भी है? कुछ असलियत उस तरह की बात नहीं है?

उ०: नहीं।

प्र०: कुछ कल्पना पर आधारित है।

उ०: उस एज का एक लड़कों का उसके भेदभाव, एक रोमांटिक भाव..

प्र०: एडवेंचर, साहस जिसको कहते हैं.. ? यह जो आपकी लम्बी कहानी है **बर यात्री**। इसमें तो कुछ लगता है वास्तविक घटना वगैरह ही है। क्योंकि पात्र जो सब हैं, कुछ तो अंग्रेजी में हम

लोग इसका स्टॉक टाइप्स कहते हैं, कुछ इस तरह के करैक्टर्स जैसे उसमें घनसा का तुतलाना 'ग' उच्चारण करना दो बार, इससे जो ह्यूमर पैदा होता है इस तरह की चीजें तो पहले से बनी हुई हैं, लेकिन कुछ को घटना का जो जिक्र किया है तो इसमें तो कुछ सच्चाई का पुट भी होगा और कुछ अपनी ओर से भी जोड़ा गया होगा।

उ०: उसमें.. रीयल करैक्टर नहीं है।

प्र०: स्टॉक्स हैं सब, घनसा और ये सब।

उ०: हम **शिवपुर** में रहते थे और वहां से **रिपन कॉलेज** जाते थे पढ़ने के वास्ते। उस समय खाली पानी था और बस वगैरह कुछ नहीं था। हम गंगा पार होकर के चले जाते थे। तो उस समय में हमारा फुटबॉल का शौक रहता था, खूब पूरा। तो उस समय में फुटबॉल,.. क्रिकेट वगैरह का नहीं। फुटबॉल ही का शौक था। तो हम लोग वहाँ जो पार्टी मिल गया अपना एज का, जो कोई साथ पढ़ता है, कोई दूसरा एक उमर का उस समय उस सब का रहन-सहन.. उसी का एक इम्प्रैशन उसमें पड़ा। लेकिन कोई करैक्टर उस सब का नहीं है। दूसरे वह सब पढ़ता था कोई यह नहीं था। लेकिन उस जमाने की कुछ छाया.. । आपको समझा दें।

स्कूल है। **कैलकटा** के इस पार शांत जगह है। कैलकटा शिवपुर शांत जगह है। सोशल लाइफ है। कैलकटा में गो कि नहीं है। उस जमाने में भवानीपुर में था। और कोई जगह में उस किसम का सोशल लाइफ नहीं था। संघबद्ध सोशल लाइफ नहीं था। शिवपुर में लेकिन था। और शिवपुर में बहुत बड़े-बड़े आदमी थे। बड़े-बड़े जमींदार थे, बिगड़ गए हैं लेकिन और बड़े-बड़े मर्चेंट्स थे। यह **हकदर एण्ड कम्पनी** पेपर मर्चेंट इतना बड़ा - शिवपुर ही में उनका घर है। उसके बाद **वटकृष्ण पाल**। उस जमाने में उनके जैसा मर्चेंट कम ही था कैलकटा में। उनका घर यहाँ है। अच्छा, इन लोगों का लड़का जो था वह लोग को खाने-पीने का बेफिक्र था एक तरह से। पढ़ना ... कोई पढ़ता था कोई वैसा मन नहीं था। तो कोई सोशल काम करेंगे, वालंटियरी काम करेंगे। आजकल बिल्कुल नहीं है। उस जमाने में उन लोगों का.. घर में खाना था। भविष्य की कोई चिन्ता नहीं थी। तो वे लोग आसानी से अपनी खुशी के मुताबिक लाइफ गुजारते। वालंटियरी करेंगे। यहाँ यह होता है तो वहाँ जाकर के शो दिखा देंगे। तो यही सब उन लोगों का है। सेंट्रल आइडिया हुआ **घनसा का विवाह**।

सब का विवाह होता है, उसका विवाह लेकर के, इन्सिडेंट-सा हो जाता है। चलो तुमको हम लोग ... । अब उसका जो मामा था वह इस ख्याल में बेफिक्र था।.. अपना घूम फिर कर रहा है कोई दिक्कत भी थी लेकिन उसका अपना खाने का क्रेज था। वह उसका अपना ट्रेड था। तो वह जानता

है कि हमारे लिए ही करेगा वह लड़का-वड़का कुछ नहीं था। इस हिसाब से.. और कुछ हँसी की नजर से, कुछ हल्की नजर से उसको देखा है, करने दो, करने दो।

प्र०: और सर्टिफिकेट में पदोन्नति की घटना का जो जिक्र किया है वह भी बिल्कुल काल्पनिक है?

उ०: उसकी जड़ हम बताते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कभी-कभी जैसे हवा से उड़ा हुआ कोई प्लॉट आ जाता है। हम उस समय तो **इंडियन नेशन** के **मैनेजर** थे। ऑफिस में बैठे हुए थे। इंसिडेंट क्या हुआ था... हमको मालूम नहीं था। हमको यक-ब-यक एक प्लॉट आ गया कि कोई लड़का अगरचे ऐसा यह हो, ऐसे नीचे तो उसका नतीजा क्या होगा? तो नतीजा सोच करके, बना लिया। और कुछ नहीं था उसमें।

प्र०: अच्छा उपन्यास के संबंध में एक बात और पूछना चाहूँगा जो एक मिथ का प्रयोग किया गया है ऋषि की कन्या, कौशिकी, दो कन्याएं थीं। उस उपन्यास की जो कहानी है उसमें आपने कोशी नदी को मूल पात्र के रूप में लिया है उसमें जैसे कोई अभिशाप है। आपने ऋषि कन्या का जिक्र किया है कि दो बहनें थीं और यौवन के फूल तोड़ने की जो बात कही गई थी और वह भूल गई और इसका अभिशाप मिला। और दो बहनें थीं कमला और कोशी और उसके लिए उसको अभिशाप मिला और सौ वर्ष तक वे अलग रहेंगी, दोनों बहनें अलग रहेंगी। उसके बाद उनका मिलन हो सकेगा। तो यह जो आपने जो अभिशाप दिखलाया है, अभिशप्त के रूप में तो जैसे लगता है कि एक फिर वही **राम** और **अहिल्या** वाली कथा। फिर कोई राम आयेगा और फिर कोई ऐसी बात होएगी। और आपने अन्त में एक मैसेज भी दिया है कि अब कोशी का वह रूप नहीं रहेगा। वह अन्नपूर्णा वाला भी रूप होगा। तो एक आशा का संचार भी आपने अपनी ओर से दिया है।

उ०: मिथिला में कोशी और कमला के बारे में एक (मान्यता) चालू है।

प्र०: ऐसा प्रवाद है कि आगे ऐसा होगा। तो इसका आधार बनाकर क्योंकि मिथ में जो हम लोग कहते हैं कि उसमें एक सुविधा है कि उसमें थोड़ा परिवर्तन करके उसमें अपनी ओर से जोड़ सकते हैं। तो शायद इस तरह का कुछ आपने किया है कि यह जो अभिशप्त कोशी और उसके जो आदिवासी हैं उनका भाग्य बदलेगा और ऐसे तो बहुत कुछ बदल भी चुका है, अब नहर, वगैरह बन जाने के बाद.. अब वह पहले वाली बात रही भी नहीं।

उ०: नहीं।

प्र०: तो आपने जो पहले लिखा था तो उसमें ऐसा लगता है कि साहित्यकार जो है सिर्फ उस समाज की ओर देखता ही नहीं आगे के बारे में भी सोचता है, तो वह दृष्टि आपकी रही होगी। स्रष्टा की दृष्टि। तो इससे आपका उस जगह के प्रति और उस जगह के लोगों के प्रति प्यार भी झलकता है और साथ-साथ हम क्या कहेंगे साहित्यकार जो अपने समय की नहीं युग-युग की भी बात

कहता है, युग-स्रष्टा भी होता है वह। सिर्फ दृष्टा ही नहीं होता है। तो कुछ इस तरह की भी बात है?

उ०: नहीं युग-स्रष्टा की बात नहीं है। बात है क्या, माफ कीजिएगा राइटर होने के वास्ते हम लोगों को बहुत भाव लेकर के काम करने पड़ता है। कभी-कभी दोनों भाव मिला देने पड़ता है। तो जब जिसको उठाते हैं जो भाव को उठाते हैं मन उसी तरफ भाग लेता है। खुशी का जो भयंकर भाव जो कि हम कहा कि इसको हटा रहे हैं यह कर रहे हैं यह ठीक नहीं है। समझ गए? तो यह संभव नहीं है। तो वह एक लिखने का उस समय में आया तो उसी को, भयंकर भाव.. तो उसको ठीक से एक्सप्रेस करना है। वही है।

प्र०: और ऐसे भी तो शांत रूप सबको अच्छा लगता है। अच्छा, इस कहानी में एक सहयात्री है जो कि कहानी कहता है यानी उसके मुख से आपने कहलवाया है। उसके पीछे कोई वास्तविकता तो होगी घटना होगी। वह जो कहानी कह रहा है?

उ०: कौन? कवि?

प्र०: एक सहयात्री। उस (कहानी का नाम अस्पष्ट है) एक सहयात्री है जो कहानी कह रहा है। **मैथिल ब्राह्मण** है।

उ०: अरदली।

प्र०: हाँ वह अरदली है। मैथिल करैक्टर है वह कि वह **सहरसा** का है वह लक्ष्मीसिंह जो है वह ही कहानी कहता है। कुछ कहानी कहता है। पूरी कहानी तो वह नहीं कहता।

उ०: वह बीच-बीच में उसका रीयल कैरेक्टर है। उसका नेचर था कोई भयंकर कुछ आकर के उनको पास पहुँचा दे। यह एक किस्म का कैरेक्टर होता है। हमेशा, जब आया घर में, उस वक्त एक भयंकर बात लेकर के आया। ऐसा कैरेक्टर हमने देखा है। वह नेचर है उसका। बनाकर के फिर ले आवेगा। □
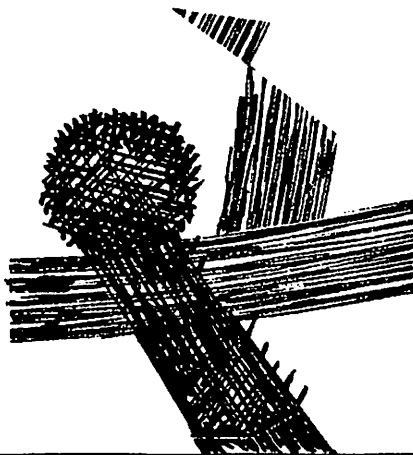
॥ हिन्दी उपन्यास के अमिट अध्याय : उपेन्द्रनाथ अश्क ॥

हिन्दी उपन्यास कथा-शिल्प को समृद्ध करने वाले विरल कुछ नामों में पांक्तेय, अनेक कालजयी कृतियों के साहसी प्रणेता और नाट्य-सृजन क्षमता सम्पन्न कथा के, अनूठे चितेरे हैं—उपेन्द्र नाथ 'अश्क'।

16 नवम्बर, 1987 से 19 नवम्बर, 1989 के मध्य इलाहाबाद में हुई अपनी विस्तृत रेडियो- जीवनी में भी अश्क जी ने जिस अंदाज और सहजता से जीवन-यथार्थ को उपस्थित कर दिया है, वैसा आपके द्वारा ही संभव है। यद्यपि यहाँ, इसके कुछ ही अंश प्रकाशित किये जा रहे हैं, ये भी मर्म को स्पर्श करेंगे और आन्दोलित करेंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

अश्क जी से भेंट कर रहे हैं डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र, सुप्रसिद्ध साहित्य-समीक्षक और अश्क जी के आत्मीय।

प्र०: आपका जन्म कब हुआ और कहाँ हुआ?

उ०: मेरा जन्म जालंधर में हुआ यानी कि मुझे यही बताया गया और 14 दिसम्बर, 1910 को दोपहर के वक्त हुआ। दोपहर में वैसे पैदा होने वाले बहुत अच्छे नहीं समझे जाते, गड़बड़ होती है, लड़ाके होते हैं, तेज होते हैं। मैं तो बचपन में इतना तेज नहीं था, बीमार ही रहता था। लेकिन बहरहाल, हमारे यहाँ यह एक गाली होती है कि **दोपहर में पैदा** हुआ है।

प्र०: तो घर पूरा भरा हुआ था या नहीं? आपके माँ-बाप, पिता, दादा-दादी आदि, काफी लम्बा परिवार रहा होगा , जहाँ तक मैं समझता हूँ।

उ०: नहीं। मेरे दादा तो **पटवारी** थे और **कपूरथले** में थे। मेरी दादी जब मेरे पिता तीन बरस के थे, तो पूरा परिवार ही प्लेग में मर गया था। एक छोटे दादा और मेरे पिता और मेरे दादा और मेरी परदादी, बस यही जिन्दा रहे थे। तो अब आप कल्पना कर लीजिए कि घर में तो सिवाय मेरी माँ और मेरी परदादी के, कोई नहीं होगा।

सतपूती मेरी माँ कहलाती हैं। ज्योतिषी कहते हैं कि यह सतपूती है। एक लड़की भी हुई थी पाँचवीं जगह पर होगी और वह ढाई साल की हो कर मर गई। हमारे यहाँ चिन्तपूर्णी जाके **यज्ञोपवीत** और **मुण्डन** करवाते हैं और वहाँ मेरे छोटे भाई और उस लड़की के मुण्डन करवाये थे। वहीं कहीं कान को छेदा गया और कुछ इनफैक्शन हो गया और उससे नहीं ठीक से इलाज हुआ .. और वह... मुझे सारा सीन आज तक याद है कि लड़की को जहर फैल गया सारा, दोनों को फैल गया, पर बच्चा बच गया, लड़का बच गया और लड़की मर गई और हमारे घर में सात दिन शोक ही शोक रहा।

प्र०: आपके बचपन का क्या नाम था, घर का नाम?

उ०: मेरा नाम था - पिन्दो।

प्र०: इसी नाम से बुलाते थे आपको घर वाले?

उ०: पिन्दो बुलाते थे और मुझे बहुत बुरा लगता था क्योंकि पिन्दो के साथ टिण्डो लगा देते थे। पिन्दो पे टिण्डो मेरी परदादी कहती थी कि "टिण्डो मुझे बहुत सरदी लगती है" तो मुझे इस नाम से बड़ी चिढ़ होती थी। लेकिन कुछ किया नहीं जा सकता था। क्योंकि बाप-माँ, यही नाम प्यार का नाम है, उपेन्द्र से पिन्दो, तो बहुत बुलाते। वैसे लग्न का नाम मेरा **इन्द्र नारायण** है।

प्र०: अच्छा अश्क जी, तो आपकी शिक्षा-दीक्षा की क्या व्यवस्था उन्होंने की थी? आपकी पहले जालंधर में प्रारम्भिक शिक्षा हुई...

उ०: बात यह है पहले तो पिताजी खुद पढ़ाते रहे और वह अंग्रेजी पढ़ाते थे। मैथेमैटिक्स उन्होंने पढ़ाया नहीं। मैथेमैटिक्स मेरा वीक रह गया और वैसे दिमाग मेरा अच्छा है। तीसरी जमात में दाखिल कराया। मैं कहूँ मुझे दूसरी में दाखिल कराओ, मुझे तीसरी का हिसाब नहीं आता। कहा, "यह पढ़ायेगा साला।" एक टीचर रख दिया। वह मुझसे हुक्का भरवाता था और पास कर देता था।

प्र०: तो तीसरी में आप वहाँ भर्ती हुए और कब तक वहाँ शिक्षा ग्रहण की?

उ०: हमारे यहाँ प्राइमरी में पाँच क्लास तक है और उसके बाद छठी में हम ऊपर जाते थे और उसके बाद डी० ए० वी० कॉलिज में चले जाते थे। डी० ए० वी० स्कूल में **दयानन्द ऐंग्लोवैदिक हाइ स्कूल** और वहाँ से मैंने मैट्रिक किया तो उसी साल, उससे एक साल पहले ही एफ० ए० की क्लासें शुरू हो गयी थीं। मेरे भाई पहले बैच में गए। फिर हम दूसरी बैच में गये और उसी साल थर्ड ईयर वहाँ शुरू हो गए। अगर वहाँ नहीं होता तो मैं नहीं पढ़ पाता क्योंकि बी० ए० खुल गया, इसलिए मैं बी० ए० तक वहाँ पढ़ा।

एफ० ए० तक तो मेरा पढ़ने में मन नहीं लगा। मैट्रिक में फेल हो जाता क्योंकि मैं मैथेमेटिक्स नहीं जानता था बिल्कुल। मुझे सौ में से एक नम्बर मिलता था। लेकिन फेल हो जाने का मतलब था पढ़ाई का बन्द हो जाना, हमेशा के लिए, कोई दुबारा भेजने वाला घर में नहीं था। (एक समय में)... मेरी बीबी बीमार हो गई। उसको टी० बी० हो गई। उसको मैं दो दिन देखने जाता था। आठ मील साइकिल पर धूप में। मैंने एक ट्यूशन भी ली हुई थी। मेरे पास छत नहीं थी। मैं बाहर पढ़ता था। मेरे पास पैसे नहीं थे किताबों के। किताबों के एक दूकानदार से दोस्ती मेरी थी। मैं बहुत अच्छा एक लेखक था और मेरा नाम था उस वक्त भी। तो मैं उसके पीछे बैठ के पढ़ता था। वह मेरा भक्त था। इस तरह से मैंने पास किया। बट आइ टुक डिसटिंक्शन।

प्र० : अच्छा, अब आप बतायें कि लिखने का यह जो शौक है आपका, यह कब से शुरू हुआ? आपके बी० ए० करने के बाद शुरू हुआ या बी० ए० करने के पहले से?

उ० : लिखना, मेरा ख्याल है तीसरी चौथी से। ऐसा था न कि हमारे एक वह यानी कि तख्तियाँ सुखाते थे। एक रहट चलता था और रहट से चौड़ी नाली में पानी बिल्कुल साफ चलता था। सामने स्कूल था। तो नाली में बैठ के अपनी तख्ती की गचनी पोंछते थे, उसको सुखाते थे।

सुक नी फटिये, लौंगा चटिये
लौंग सुपारी, केसर क्यारी
फट्टी गई सुक, मेरी कहानी गयी मुक।

तो इस तरह से एक गाना हर चीज से हमारे यहाँ पंजाबी में होता है। इनमें मैं एक दो अपने लगा देता था। जैसे लोहड़ी आती है...

यहाँ खिचड़ी जिस दिन होती है, वहाँ लोहड़ी होती। लोहड़ी में जहाँ आपके होली में लकड़ी जलाते हैं, हमारे यहाँ लोहड़ी में जलाते हैं। दिसम्बर की अमावस की होती है और उसमें गन्ने ऐसे डाल देते हैं, जड़ की तरफ से। वह जो पिड़-पिड़ करते हैं तो थोड़ी-सी निकाल करके उसको जोर से दीवार के साथ मारते है। तो जोर से पटाखा बजता है। तो यह रात भर होता है और गरम-गरम रस चूसते हैं, वह सारी रात।

प्र० : पहली कविता तो आपने पंजाबी में ही लिखी। फिर तो आपने... ?

उ० : हाँ, अब ऐसे जैसे लोहड़ी के गाने होते हैं - जैसे, लोहड़ी से सात दिन पहले मोहल्ले के लड़के-लड़कियाँ उपले इकट्ठे करने के लिए, उपले को वहाँ पंजाबी में कहते हैं - **पाथी,** हम जाते थे तो ऐसे गाते थे -

दे माई पाथी, जिये तेरा हाथी
दे माई गोटा, जिये तेरा पोता।

अब कोई माई नहीं भी देती थी । रोज-रोज लौंडे आकर तंग करते थे। उनको गाली भी, मतलब गीत में ही देते थे -

मोर आया मोर आया, माई दे घर चोर आया

यह कहते हुए भागते थे। तो इन बन्दों में मैं अपने को भी जोड़ने लगा। इट इज हाउ आइ स्टार्टेड...

प्र० : तो लोक गीतों का रूप था उसमें ?

उ० : हाँ।

प्र० : उसमें परिवर्तन करके

उ० : लोकगीत वैसे मुझे प्रिय बहुत थे।

पंजीबी लोकगीत मुझे आज भी याद हैं। यहाँ से तो यह शुरू हुआ। यह समझ में तो पाँचवी छठी में (थी) और आर्य समाज के वार्षिक उत्सव पर, हमारे प्राइमरी स्कूल में हाइ स्कूल तक जुलूस निकलते थे। उसमें गाने होते थे। वह गाने जिस किताब से थे और उस किताब का नाम था **आर्य भजन पुष्पांजलि** वह किसी तरह माँ से पैसे-धेले जोड़ के महीने-दो-महीने में मैंने खरीद ली। उसकी तर्ज पर मैं गीत लिखने लगा।

है भला तेरा इसी में माँस खाना छोड़ दे
हे प्रभु हमें शुद्धता ही दीजिए

प्र० : शुद्धता ही दीजिए आपकी पहली कविता थी?

उ० : हाँ, तो उसमें हम कविता जोड़ते थे। इस तरह से मेरी शायरी शुरू हुई। फिर चूँकि बैत गाने में होते थे। और बैत का तो संसार ही अद्‌भुत था। मुझे आज भी अच्छे लगते हैं आज भी लिखने को मन होता है।

लाम लद गये वक्त यरानया दे
बिरला होएगा कोई-बिरला होएगा कोई
बिरला होएगा कोई अखुदार अजकल।
जिन्नी करो वधीक वधीक उल्फत,
उन्नी होंदी ऐ मिट्टी ख्वार अजकल।
कहणा यार, ते यार दा बुरा मनना,
एहो कुल्ल जमाने दी कार अजकल।
तारा चन्द रख बन्द कर मोहब्बता नूं,
ना ओ समां रिया न यार अजकल।।

यह बैत है एक। तो हमारे यहाँ **हरवल्लभ** का मेला लगता है, यह तो आप जानते होंगे। सारे हिन्दुस्तान के वहाँ शास्त्रीय संगीत वाले आते हैं। लेकिन आम जनता को संगीत (का) आ-ई तो समझ नहीं आता। तो वहाँ एक पूना जगह थी - उस जमाने में जहाँ औरतें नहाती थीं। उन तीन दिनों में वहाँ नहाती थीं। वहां बैतवाद, जो सारा साल इन तीन दिनों की तैयारी करते थे, आ के बैठ जाते थे। मैंने गिद्दे के बारे में बड़े विस्तार से इसका वर्णन किया है। तो एक उस्ताद के चेले इधर, एक उस्ताद के चेले उधर। एक आदमी ही कहेगा। तो सालभर तो बनाते ही रहते थे।

तो पहले बैत वह अगर मुसलमान है तो **अल्लाह** से शुरू करेगा। जा के कही दे तू मेरे अल्लाह ताई और अगर हिन्दू होगा तो **दुर्गा** से या **राम** से शुरू करेगा। पाँच-सात बैत के बाद, वह फिर इश्क पे आ जाते थे। इश्क की बड़ी देर शायरी होती रहती थी। और जब उसका भी खजाना खाली हो जाता था तो फिर गाली-गलौज पे उतर आते थे। और गाली-गलौज भी बैत में होती थी। एक बैत सुन लीजिए गाली-गलौज की। जिससे पहले बैत कही उसने कहा होगा कि मुझे तो यह समझी, तू मुझको यह समझना। और यह उसके जवाब में कहता है कि :

समझी समझी तू पिया की कह रेयां
तेनूं समझां ते आखिर मैं की समझां,
जेड़ी ते मेरे नाल ब्याही होई है

तेरे पिओ दी मैं औन्नूं धी समझां।
समझी समझी तू पिया की कह रेयां हैं।

तू क्या कह रहा है। मुझे यह समझना समझने में क्या समझूँ जो तेरे मेरे साथ बियाही हुई है। उसको मैं तेरे बाप की लड़की समझता हूँ कि तू मेरा साला है।

तुकबन्दी के स्तर पर फिर उसी में उसने जवाब दिया। और आखिर में जूता उतार के फेंक दिया जाता था। वह बहुत ताव खा जाते थे। गालियाँ भी बहुत गन्दी-गन्दी होने लगती थीं। महफिल बरख्वास्त हो जाती थी। जैसे छत्ते को छेड़ दो और मक्खियाँ इधर-उधर होकर फिर आ जायें। वे एक बार चक्कर लगाके आलू के गप्पे खा के, यह जो क्या होते हैं गोल-गप्पे और चाट-वाट खा के, फिर आ के बैठ जाते थे। फिर दूसरी टोली शुरू हो जाती, खैर। यह तीन दिन लगातार होता था। मुझको **बैत** बहुत ही अच्छी लगती थी। मुझे आज भी बहुत अच्छी लगती है।

प्र० : परसियन और उर्दू में बड़ा लम्बा इसका रिवाज है?

उ० : हाँ, लेकिन पंजाबी में इस तरह था मैंने लिखा। तो मैं पंजाबी बैत लिखने लगा और एक **उल्फत** थे, रंगरेज, उनका शागिर्द हो गया। लेकिन अनफोर्च्यूनेटली वह सारी **बैतबाजी** हमारे पंजाब में यानी मेरे **जालंधर** में निचले तबके में हुई। **उस्ताद उल्लफत** जो **दोआबा पंजाबी सभा** के प्रेसीडेंट थे, रंगरेज थे। यहाँ तक हाथ उनके रंग रहते थे। पिचका हुआ मजबूत चेहरा, मजलूफ और बैठते थे और साथ में दूसरा प्रेसीडेंट बड़ा सुन्दर बैठता था। लेकिन वह उस्ताद माने जाते थे। क्यूँ माने जाते थे, मुझको कोई समझ नहीं है।

प्र० : अश्क जी, अभी आपने बताया कि जो उस्ताद उल्फत जी थे, उनके साथ-साथ और भी कुछ लोग थे जो वहाँ इकट्ठा होते थे। वे कौन-से लोग थे? क्या पेशा करते थे? कहाँ रहते थे?

उ० : ऐसा है, जैसेकि मैंने लिखा भी है कई जगह। नॉविलों में भी, साक्षात्कारों में भी, कि मैं पंजाबी से उर्दू में क्यों आया, यही कुछ समस्या है ना।

असल बात यह थी कि वैसे तो **धनीराम चात्रिक** और भाई **वीरसिंह,** पंजाबी के बहुत बड़े कवि हुए और बाद में **मोहन सिंह माहिर** और **अमृता प्रीतम** वगैरा। लेकिन जब कि मैं बात करता हूँ, यह 1925 की बात है। जब मैं आठवीं जमात में पढ़ता था। तो उस वक्त हमारे पंजाबी का माहौल यह था, माने उस शहर का, कि हमारे मोहल्ले हमारे पंजाब के हमारे जालंधर के बाजारों में किस्सा गो होते थे। वे किस्से भी इस तरह से होते थे कि वे किस्से लिखते थे - जैसे हवाई जहाज आ गये । तो -

वाह वाह ! जहाज हवाई जी उड़ दे गये नाल सफाई जी,
चक्कर गिरद शहर के लावण लोकी मुँह बिच उंगलियाँ पावण।

अब इसमें किस्सा बन गया।

प्र० : कविता में लिखते थे?

उ० : कविता में लिखते थे। यार बुरका है...

ये बुरके बुरका ऐवे चट्टी, इस बुरके दुनिया पट्टी

और बुरके की खराबी होती थी। जो समस्यायें होती थीं उनमें वे लोग कविता लिखते थे। वह दो पैसे का किस्सा होता था। वह छपवा लेते थे। एक पैसा उनको बचता था और शाम तक वह चार-छः आने पैदा कर लेते थे। फिर वही किस्सा छपवा लेते। इससे उनकी रोजी चलती। कुछ ऐसे भी थे -

संग बिच तेल बुरा, कंजरी दा मेल बुरा

इस तरह के किस्से भी **बैत** में होते थे। वह खड़े होकर एक आदमी मुझे अच्छी तरह याद है कि उसकी शक्ल, मदारी जैसे होते हैं, यह एक किस्सा गोई का वहां माहौल था। और पंजाबी शायरी थी। दुर्भाग्य से मेरे शहर में वह निचले तबके की थी।

मुझे याद हो गया मैमोरी तो मेरी अच्छी है, लेकिन जैसे बाकी जो लोग थे, पूरा का पूरा एक मुशायरा, पूरा का पूरा एक वातावरण वह जो था, उसमें उस्ताद लोग जो थे जैसे अब्र थे। **निच्चेमन** थे, निच्चे हुक्के के नीचे जो बनाते थे ओर **वजीर साहब** थे, वह कोयला फरोश थे । और कोयले से कपड़े काले हुए, तहमद भी काला, कुर्ता भी काला, पगड़ी भी काली और चेहरा भी काला। और आ के वह अपना शेर पढ़ते। उस्ताद थे। दस-बीस लौंडे शागिर्द थे। अब **शौकत** थे, **कन्डक्टर** थे, **हस्मत** थे, **क्लीनर** थे, **श्याम साहब** वह जो किस्से बेचने वाले थे। पगड़ी ऐसे लटकी हुई, बड़ा खूबसूरत आदमी, लड़का जवान और गा कर किस्सा पढ़ता था और ही वाज़ ए क्रेज। उस जमाने में नया-नया सिनेमा आया था तो बड़े-बड़े इश्तहार.. चलती हुई गाड़ियाँ बनाई होती थीं तिकोनी और आगे लौंडे अपना लम्बे-लम्बे टोप पहने हुए और हाथ में, आगे वह घण्टी बजाते तो **हरदयाल**-यह कवि हरदयाल और वह भी उस्ताद हरदयाल थे। हर बैत में, आखिर में वह कहते लब्ज बैठ के उसी वक्त की बात बनाते थे। और आखिर में कहते **हरदयाल** ने **बैत** तेयार कीती, विच बैठ के यारां ते मित्तरां दे। इस तरह से लब्ज बैत में। आखिर में वह उस्ताद थे। अब मैं स्टेशन मास्टर का लड़का सफेद पोश, ब्राह्मण का बेटा। अब वे लौंडे कहलाते थे अपने उस्ताद के। यह उल्फत का लौंडा है। तो मेरा एक उस्ताद भाई था निश्तर। वह झगड़े में कह गया और साले उल्फत का बिस्तर गरम करने वाले लौंडे साले हम से जूझते हैं। मुझे लगा कि कल साले ये मुझे भी यही कहेंगे। तब मैंने छोड़ दिया। बिल्कुल इसलिए छोड़ दिया कि मेरी निम्न मध्यवर्गीय सफेद पोशी को उल्फत का लौंडा कहलवाना कबूल नहीं हुआ।

प्र० : आघात पहुँचता उससे ?

उ० : यानी कि हालाँकि बैत मुझे अच्छी लगती थी।

प्र० : अच्छा अश्क जी जब आपने यह सिलसिला शुरू किया है तो कृपया यह भी बतायें कि उन दिनों शायरी का जो यह माहौल था, उस्तादों का यह माहौल था जालन्धर में उसके साथ- साथ घर का क्या माहौल था? जैसे मसलन आपके घर में कौन-कौन सी किताबें पढ़ी जाती थीं? आपकी माँ कौन-सी किताबें पढ़ती थीं?

उ० : हाँ, यह मै कहना, बताना भूल गया कि मेरे कवि होने में इसका भी हाथ है। या मेरे यह लेखक होने में भी इसका हाथ है। मेरी माँ तो बहुत धर्मपरायणा थीं। वह दुर्भाग्य से पाँच जमात भी नहीं पढ़ी थी। पर उसने हम सबको पढ़ा दिया। यह बात है मेरी खातिर उसने अंग्रेजी पढ़ी थी। मेरे पिता बहुत पीटते थे। तो उसने अंग्रेजी पढ़ी। मुझको पढ़ाने के लिए और वह.. जैसे गीता का पाठ करती थीं। महात्म्य वह पाठ के तौर पर पढ़ती थी। उसको कुछ लेना देना नहीं था। जैसे **लल्लू लाल** का **प्रेम-सागर** था।

वह पढ़ती थीं। हिन्दी मैंने घर में सीखी पढ़नी। लिखता तो नहीं था लेकिन **प्रेम सागर** सारा पढ़ा था उस जमाने में आठवीं जमात में मुझे याद है मैंने यह श्रीमद्भागवत सारा पढ़ा था। मोटी किताब थी। उसकी मुझे कुछ कहानियाँ आज भी याद हैं। दधीचि की जैसे। और इस तरह से ... एक बार माँ ने, एक बड़ा ट्रंक था अन्दर, उस जमाने में लकड़ी के ट्रंक होते थे, टीन की उस पर कारीगरी होती थी। वह खोला तो उसमें से किस्से निकले।

मेरे पिता बहुत ही विलक्षण थे, मैंने पहले कहा ना... उनकी आवाज बड़ी सुन्दर थी। वह इतना अच्छा गाते थे कि मैंने वैसा गाने वाला सुना नहीं। मैं कई बार सारी रात जागता रहता था कि कब मेरे पिता गायेंगे। करीब बारह बजे रात को कहीं एक लाइन गाते। मीलों तक उनकी आवाज गूंजती चली जाती थी। एक-दो लाइनें गाते थे और पीये हुए हैं,

दे डारो राधे रानी बाँसुरी मेरी,
रूपे की नाहीं राधे, सोने की नाहीं राधे,
रूपे की हड़ हड़ बाँस की पोली दे दे
राधे रानी बांसुरी बस।

या

ये इश्क तेरे कमिलिये हीरे जग बिच मैनूं ख्वार कीता ए

या

चूड़ी गड़ा दे ना जांई न जांई ढोल पतलियां दे मानूं,
चूड़ी गड़ा दियां पतलियां नारा, समझ समझ पग पाई।
पाई वे ढोल पतलियां दे मानूं।

यह गाते थे। पर वह इतना अच्छा गाते थे। मेरी माँ भी कहती हैं कि 'जब ये होशियार पुर कभी जाते थे तो मेरी सहेलियाँ और मैं गाते थे।' ही वाज ए वन्डरफुल वाइस।

प्र० : तो किस्से की क्या किताबे थीं?

उ० : किस्से **मिलखी राम** के। मिलखी राम दा - "काट्ठा दा उल्लू" मिल्खी राम दी **कुच्छू कूं**, मिल्खी राम दा "ऐसे किस्से इश्किया" और उसमें एक मोती राम का किस्सा था। ये मोती राम के किस्से नैतिक थे।

जैसे

मोती राम तू समझ प्यारे तू माया काग बनेरे दा,
पल विच आवे छिन्न विच जावे शोर करे चौं फेरे दा।

मोती राम तू समझ प्यारे दुनिया कूड़ा बाना ऐ,
जिहदे नाल तू लायी दोस्ती, ते उन्हां भी चले जाना ऐ।
सिर दे उत्ते काल कूकया क्या राजा क्या राणा ऐ।

अब ये सारे के सारे नैतिक थे। मोती राम के और **मुझे** तो सारे याद थे तब। जब आज भी मुझे दो चार याद हैं तो उस जमाने में...

यह तो मेरी शायरी की इब्तदा यूँ हुई। पंजाबी में और उर्दू में। फिर **जालंधर** तो कहते थे कि यहाँ तो यार ईंट उठाओ यहाँ नीचे से या तो **गायक** निकलेगा या **कवि** निकलेगा। तो वहाँ तो उस्ताद थे उर्दू के भी बहुत। **आबिद साहब** थे, **रजा साहब** थे, और भी बहुत थे। ये बस्ती के थे। नूरनारवी के शार्गिद थे। **दाग** की परम्परा में, तो मैं उनका शागिर्द हो गया और मैट्रिक में...

प्र० : पंजाबी के बाद उर्दू में लिखना शुरू किया।

उ० : इसलिए पंजाबी छोड़ दी, बता तो रहा हूँ।

मतलब इस वितृष्णा से माहौल बदलेगा वह इलीट की भाषा थी ऊपर के तबके की, शहरी लोगों की भाषा थी। उर्दू तो पहली जमात से पाँचवीं जमात तक पढ़ायी ही जाती थी। मुझे उर्दू आती थी।

प्र० : उर्दू में ही पहले शेरो शायरी शुरू की ?

उ० : हाँ, शेरो शायरी "इस बात पर दावा है मसीहाई" से मेरा पहला है।

बस इसी बात पे दावा था मसीहाई का,
दम तेरे सामने निकला तेरे शैदायी का।
सब मुझे जान गये-सब मुझे पहचान गये,
फायदा कुछ तो हुआ इश्क में रुसवाई का।

यह पहली मेरी गज़ल थी। और पहले शेर पर मुझे दाद मिली। मै अभी गया हूँ 75 में। 85 में वहाँ मेरा जन्म दिन मनाया गया। तो वहाँ किसी शायर ने यह गज़ल पढ़ी। कि अश्क साहब को तो याद नहीं होगा कि इन्होंने पहली गज़ल यह लिखी। मुशायरा **ग्रामी** में **1931** में पढ़ी गयी होगी और उसने सुना दी वहाँ और मैंने कहा - 'नहीं,' 'मुझे याद है।'

उर्दू में भी यही था। हमारे उस्ताद भी हुस्न-परस्त थे। मेरे पिता ने सिर मुंडा रखा था यहाँ चौकोर खत बनाते थे। अखाड़े जाते थे। उसमें से वह बाहर आ गये। मेरा माथा सिकुड़ गया और खत बड़ा। वह अजीब भयानक चेहरा बन गया। तो कॉलिज में जा के मैंने अपने आप को ठीक किया बाल रखे और यह किया और माथा बड़ा कर लिया। तो अब यह है कि वह इस तरह से किया। उस्ताद मेरा एक दोस्त था - **टेक चन्द अख्तर**। सुन्दर आदमी था। मेरे साथ पढ़ता था एफ० ए० में। वह पढ़ता बहुत अदा से था। बड़ा ही नखरेवाला लड़का था। गरीब घर का था। कपड़े भी दूसरों के पहनता था। लिखाता गज़ल मुझ से था। उस्ताद उसकी गज़ल देखते थे मेरी नहीं देखते थे। एक बार उन्होंने मेरी गजल गुम कर दी। फिर से उस्ताद के घर नहीं गया। मैंने कहा मैं लिखूँगा ही नहीं। नज्म लिखने लगा। पहली नज्म जो लिखी -**विधवा के जज़्बात** वह छप गयी **प्रताप** में।

प्र० : पहली रचना थी आपकी जो **प्रताप** में छपी ?

उ० : पहली रचना।

बस फिर क्या? प्रताप में लिखते गये साल भर अजीब नामों से और वह मुझे मिला वह कौन फलाना-फलाना, वह सब छपते गये और भाई फिर से उस्ताद के पास नहीं गया। नज़्म लिखता रहा। किसी को दिखाने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ी। 50 कहानियाँ पड़ी हैं।

अब सोच लो। तब भी ऐसे ही लिखता था। दिन-रात, बिल्कुल लाइक ए मैड मैन। अब भी लिखी पड़ी हुई है। छप जायेंगी किसी दिन।

प्र० : यह जो आपमें यह प्रवृत्ति थी यह तो एक प्रकार से चैलेंज को स्वीकार करने की प्रवृत्ति है और यह आपके शरीर की बनावट की देन थी या कि जो माहौल था उसकी देन थी?

उ० : यह मेरा ख्याल है तीनों-चारों चीजें इसमें हैं। एक तो यह कि मैं इन्ट्रोवर्ट था। खेलों में हिस्सा नहीं ले सकता। लोग बड़े गुण्डे थे। पीटते-वीटते थे। मैं डरता था। दूसरे पिता जी से डरता था। मारते बहुत थे। उन्होंने मारा भी मुझे। बड़े भाई मुझे बहुत तंग करते थे। क्योंकि मैं कमजोर था। भाई तगड़े थे। सब डण्ड पेलते थे मुग्दर चलाते थे और अब यूँ था मुझे प्रकृति बहुत अच्छी लगती थी। मुझे चित्र खींचने बहुत अच्छे लगते थे; मुझे खिलौने बनाने बहुत अच्छे लगते थे; मुझे तस्वीरें बहुत अच्छी लगती थीं। क्योंकि मेरी माँ ने बहुत ही नैतिक बना रखा था। बट देअर वर (सर्टेन) थिंग इन माई ब्लड - प्रकृति बहुत अच्छी लगती थी। मैं हर साल पहाड़ जाता रहा हूँ। और हमेशा बिल्कुल ही प्रभावित होकर आता रहा हूँ। मैं पहाड़ों पर जाता हूँ, मेरा यहाँ आने को मन नहीं करता। और मैं अकेला रह सकता हूँ। दिनों, महीनों, सालों। मुझे अहसास नहीं होता कि मैं अकेला हूँ। यह फैक्ट है कि जब भी जाता... मैं कई बार डर भी जाता था कि कहीं यहीं न रह जाऊँ।

प्र० : हिन्दी में लिखना आपने कब से शुरू किया?

उ० : हिन्दी में, **प्रेमचन्द** की वजह से मैंने शुरू किया।

1931 में मेरी कुछ कहानियाँ **चन्दन** में छपीं। वह असल में बी०ए० करने के बाद घर के वातावरण से दुखी हो के। **मेला राम वफायत** शायर थे, उनकी वजह से मैं चला गया **लाहौर**। तो सामने **सुदर्शन** जी का दफ्तर था **चन्दन** का। और उसमें सुदर्शन जी, रहते थे। वहाँ एक कहानी लिखी थी मैंने **ताल-वे-अमन** जिसको चैन का अभिलाषी कहते हैं। उसका नाम **नौ रत्न** भी है। वह मैं **मेला राम "वफायत"** को सुनाने लगा कि वह आ गये तो मैंने फिर से सुनाई। उनको बहुत अच्छी लगी और कहने लगे कि '**चन्दन** के लिए लिखिए।'

अच्छा अब मेरा अब भी यह निश्चित मत है कि जो आदमी तरक्की करना चाहता है उसको अच्छे अखबार के लिए लिखना चाहिए क्योंकि स्टैंडर्ड बढ़ गया। दैनिक अखबारों में सन्डे एडिसनों में, हफ्तावार अखबारों में आया। हफ्तावार अखबारों से अब मैं पहली बार **चन्दन** में। तो मैंने अपनी तरफ से शाहकार कहानी लिख दी। औरत के फितरत पर। अब दुर्भाग्य से या तो उन्होंने अपने अखबार को बढ़ाने के लिए या सचमुच किसी लड़की ने उसकी निन्दा कर दी, या उनकी बीवी ने, वह आर्य समाजी थे उस कहानी में औरत दूसरे पति से दूसरे आदमी से प्यार करती है तो **यह मियर इफेक्ट** प्यार का चाहे, वह मर जाती है उस पश्चात्ताप में उस कहानी में, लेकिन वह बोला कि - "साहब यह तो औरत का बड़ा अपमान है, भारतीय नारी का अपमान हो गया।" अब साहब मैं बड़ा गुस्से से आया। हालांकि **सुदर्शन** ने मेरी तारीफ की लिखित नोट में, लेकिन

मुझे तसल्ली नहीं हुई। मैंने **प्रेमचन्द** को खत लिखा कि साहब आपकी कहानियाँ मैंने पढ़ी हैं **चन्दन** में। आप ने मेरी पढ़ी होगी। जरा मुझे राय दीजिए यहाँ यह।

उन्होंने एक कार्ड में चार लाइनें घसीट दीं कि... "मैं तो आपको कोइ मस्क अदीब समझता था। मेरे ख्याल में, कोई यह मुझे तांगे वाला, बहुत मुझे अच्छी लगी। मेरे ख्याल में कोई नयी चीज कहने से कहीं बेहतर है कि फितरत का सच्चा खाका खींच दिया जाये।"

अब साहब हम तो महान कहानीकार! प्रेमचन्द ने कह दिया, लेके खत शहर में साइकिल पर निकले। वह खत भी कहीं गुम कर दिया। पर जुबानी याद हो गया। और **सुदर्शन** ने मेरी तीसरी कहानी में कुछ चेंज कर दी। कहा **अश्क जी** को कुछ समझ नहीं है। हम चन्दन में नहीं लिखेगें। वह चढ़ गया ऊपर। अब प्रेम से तो यह हो गया मैंने कहानियाँ लिखीं तो **प्रेमचन्द** मेरा दिबाचा लिखें। कैसे प्रेमचन्द को पटाया, यह बाद की बात है। पर उनको मैंने **लाहौर** बैठे-बैठे सिद्ध कर लिया। और उन्होंने मेरा दिबाचा लिख दिया। दिबाचे में उन्हीं कहानियों की निन्दा कर दी। जिसकी तारीफ़ की थी। अब बरदाश्त नहीं हुआ। उसके खिलाफ मैंने किसी दूसरे से एक और भूमिका लिखायी और छाप दी हालाँकि **प्रेमचन्द** ने बिलकुल ठीक किया था। बट आई वाज टू यंग टू नो दीज थिंग्स। और वह किताब प्रेमचन्द को नहीं भेजी, और प्रेमचन्द के लिए लिखते रहे।

प्र० : उसी समय लिखा है आपने शायद, हरे कृष्ण प्रेमी भी आके रहने लगे और उनके सान्निध्य से भी, आप हिन्दी की तरफ ज्यादा प्रवृत्त हुए?

उ० : अब वह तो हिन्दी का वातावरण बन गया। **प्रेमचन्द** ने मुझे लिखा, वह कहानी मेरी तरजुमा करके छापी भी छोटी-सी। फिर उनको मैंने भेजी। उन्होंने कहा: मैं ठीक करूँगा।' वह बड़े बिजी आदमी होंगे। तो उन्होंने लौटा दी कि 'भई मैं उर्दू में लेके क्या करूँ तुम हिन्दी में लिखो।'

तो हिन्दी मैंने सीख तो रखी थी। मै पढ़ तो लेता ही था। **विशाल भारत** वगैरह सब पढ़ता था। लिखनी नहीं आती थी। प्रिय में बड़ी **ई** की मात्रा लिख देता था। भई इतनी नहीं आती थी। यहाँ से मैं चला हूँ। तो मैंने एक कहानी लिखी वह मेरी बीबी, जो टीचर (थी) पढ़ाती थी, उसने मेरी पहली कहानी ठीक कर दी। वह मैने **प्रेमी** को दिखाई। वह कैसे छपी उसकी लम्बी कहानी है। वह **विशाल भारत** से लौट आयी। बड़ी लड़ाई हुई। मैंने बड़ी गालियाँ दीं। वह साहब उर्दू की पहली कहानी...। और यह तस्वीर गुण्डों जैसी एक। अरे, अब क्या बात! बस मस्ती में लिखने लगे। मेहनत की। हो गये।

प्र० : श्रीनाथ सिंह उन दिनों सरस्वती के संपादक थे ?

उ० : संपादक तो थे वह दूसरे मतलब, असिस्टेंट थे।

प्र० : वह कौन थे देवी प्रसाद ?

उ० : **देवी प्रसाद शुक्ल।** लेकिन मेरी खतो किताबत इनसे ही होती थी। जब हट गए तब **देवी प्रसाद जी** के मेरे पास खत आये। देवी प्रसाद के पोते दे गये हैं। उन्होंने सम्भाल के रखे हुए हैं। लेकिन मेरी **प्रेमी** जी से लड़ाई हो गयी। उन्होंने फिर कोशिश की, मेरी कहानी न छपे। फिर वह तो लम्बा किस्सा है।

प्र० : प्रेमी जी के ही संदर्भ में आपने लिखा है वहाँ कोई लड़की आती थी, जिसने आपको महादेवी या बच्चन का पता बताया और उनकी रचनायें आपने पढ़ीं ?

उ० : नहीं बच्चन का ! वह बच्चन की शैदायी थीं। बच्चन हाथ से अपनी कविताएँ लिखते थे और पहले ऊपर श्री कृष्ण के लिए अपनी बीवी **श्यामा** से एक बहुत ही भावुक-सा खत लिखते थे। वह सब उसमें था। तस्वीर बनी होती थी और यह सब। तो प्रेमी जी उसको **सर्वोदया** कहते थे और उससे इश्क करते थे। तो जब मैंने **बच्चन** को देखा तो उनके पास **मधुशाला** थी। मधुशाला मुझे अच्छी नहीं लग सकती थी क्योंकि मैं तो खैयाम पढ़े हुए था। लेकिन उसके बाद मैं बच्चन में इन्ट्रेस्टेड हो गया। मुझे प्रेमी ने कहा वही **1934** के करीब शायद या **35** में **महादेवी** को पुरस्कार मिला था **सेक्सेरिया** का।

प्र० : सम्मेलन का ?

उ० : यह सम्मेलन का मीरजाफर, वह एक मैंने किताब, एक रुपये में वहीं, प्रेमी जी के साथ खरीदी। मैं वहीं इम्तहान दे रहा था एफ ई एल का...

और साहब उसने मेरा दिमाग खराब कर दिया। मुझे उसके गीत इतने अच्छे लगे। मैं सारी रात पढ़ता रहा और मैं अभिभूत हो गया। और मुझे बच्चन-वच्चन तो यानी कुछ भी नहीं हैं।

और उससे पहले मैं **पंत** भी पढ़ता था। मगर पाठक की दोस्ती हो गयी। तो यह अब उसमें, अपनी अपनी व्याख्या... । महादेवी की है वह

मुखर पिक हौले-हौले बोल, हठीले हौले-होले बोल,
जाग लुटा देंगी मधुकलियाँ -मधुप कहेंगे और,
वाक गिरेंगे पीले पल्लव-अम्ब चलेंगे मौर

समीरन मस्त उठेगा डोल-हठीले हौले-हौले बोल
झर जावेगा कंपित तृण से लघु सपना सुकुमार।

अब महादेवी ने इसको क्या है, क्यूँ लिखा, मैं नहीं जानता। पर मैं कहूँ कि यह विरहणी इतनी **पगली** हो गई है, यह तिनका बन गयी है और तिनके से एक लघु सपना, सुकुमार गिर जावेगा विरह की मारी का। अब मैं इसकी यह व्याख्या करूँ और मुझे बड़ा... । फिर यह था कि वह

सपना बन-बन नहीं पी मेरा निशीथ नीरवता से आता चुपचाप उसकी पद चाप सुभग ये पल घड़िया अनमोल। हठीले हौले-हौले बोले। अब इसमे यह जो दूसरी लाइन है कि यह मरमर की बंशी में गूंजेगा मधुऋतु का प्यार, यह जब तू बोलेगा तो पत्ते गिर जायेंगे। खिजां के पत्ते गिर जायेंगे और बहार आ जायेगी और बहार आ जायेगी तो ये, ये, ये हो जायेगा। तो यह जो कहने का ढंग जो था, मुझे बहुत अच्छा लगता था। फिर मैंने **महादेवी** पर एक कविता लिखी। महादेवी को भेजी। लम्बा किस्सा है। हिन्दी के लिए, मैं फिर हिन्दी सीखने लगा।

प्र० : आप लाहौर में आये तो लाहौर में कुछ नौकरिया भी कीं ?

उ० : लाहौर में मैं (हँसी) वह मेला राम वफायत बहुत अच्छे कवि थे। थोड़े ठस्की थे। कवि तो बहुत हुस्नपरत होते हैं। मैंने **गिरती दीवारें** किताब में साफ उसका चित्रण किया है। तो भई मैं तो जालंधर में था। तो मैं तो बड़ी जल्दी ताड़ गया यह सब मामला। तो यहाँ से निकल जाना... । लेकिन वह अपना इश्क प्लैटोनिक टाइप का था। यह सब। मामला कुछ और था यह "ठक" था, पंजाबी में कहते हैं। अब साहब उन्होंने कह दिया कि - तुम दूध पियो, यहाँ तुम रहो, यहाँ से कपड़े धुलाओ यहाँ से खाना खा लो। पैसे कोई जेब खर्च के नहीं। कुल मिला कर 25 रुपये की नौकरी और तरजुमा सीखो और जब तक तरजुमा नहीं सीखते, तब तक हर हफ्ते कहानी लिखो।"

प्र० : किस में ?

उ० : **भीष्म** में। तो मैं हर हफ्ते कहानी लिखता था। वे सब पड़ी हुई हैं हफ्ते वाली कहानियाँ। 50-60 कहानियाँ हैं। तो उसके बाद यह था कि तरजुमा मुझे आता नहीं था। लेकिन मैं घुस गया उसमें। मुझे बुरा लगता। तीसरे महीने में **सुदर्शन जी** ने मुझे **वन्देमातरम्** में डलवा दिया। तो वहाँ भी मैं हफ्ते की कहानी पर।

वहाँ मैं अजीब (तरीके) से झगड़ गया। झगड़ तो मैं हमेशा जाता हूँ, अपने से बड़े से। तो वहाँ एक ईरानी लगते थे शक्ल से **यूसूफ साहब** और यूसूफ ही थे। बहुत खूबसूरत थे। बहुत सख्त थे, बहुत सीधे थे, बहुत संजीदा थे। वह **नेशनल स्कूल** के बी० ए० थे, उस जमाने में... ।

तो वह एडीटर डमी थे और इसलिए तंग बहुत करते थे। **गणपत राय** को उन्होंने कहा "इसे मुझे दे दीजिए। मै इसको सिखा दूँगा।" और हमको दिन की नौकरी मिली। हम दिन को आयेंगे रात को नहीं आयेंगे। वह मुझसे इतने दुखी थे कि उन्होंने कहा इससे जान छूटे। एडीटर से मैं उनकी शिकायत करता कि साहब यह तो सोते हैं और यह मेरी गलती निकालते हैं, और गलती इनकी होती है। मैं बड़ा तंग करता था उनको। चूँकि मैं सस्ता था। 90 रुपये वाले को हटा कर 40 रुपये में मुझे रखा था इसलिए और हमारे मैनेजिंग डायरेक्टर बहुत अच्छे थे। मैं बहुत तेज था, उन से तेज था। मतलब वहाँ जितने लोग थे, मैं उन सबसे तेज था। मैंटली, मैं जैसे था करता

था। छुट्टी ढाई दिन की मिलती थी। दाढ़ी बढ़ा लेता था। लोई की बुक्कल मारता था। कहता -'साहब मुझे बुखार चढ़ा हुआ है।'

प्र० : तो आपकी पत्नी भी आपके साथ लाहौर में रहती थीं ?

उ० : हाँ ले गये।

प्र० : बीमार हो गयी थीं ?

उ० : बीमार तो बाद में थीं।

31 में गया हूँ। 32 में मेरी शादी हुई है। दो ही साल वहाँ रहा। तो मैं यह कह रहा था कि वह भले आदमी थे, तो इसलिए युसूफ ने मुझको ले लिया। बहुत से जो मुझ में गुण हैं वे पिता के गुणों से तो मिले। तुमने पूछा नहीं वरना वे गुण बता देता। पिता क्या देते थे? इसने मुझे सिखाया। उसने मुझे गाली भी दी। उसने मुझे डाँटा भी। लेकिन पाँच-पाँच सात-सात बार उसने **खबर** मुझसे कराई और करैक्ट नहीं की। कहा - इसको करो ठीक बनेगी। उसने मुझे दो महीने में तर्जुमा सिखा दिया। तो ज़ाहिर है ऐसा उस्ताद मिल जाये... चाहे जाहिल हो...।

प्र० : तो उर्दू से हिन्दी में अनुवाद करते थे ?

उ० : अंग्रेजी से उर्दू में।

'सुर्खी नही बनी। फिर से लिखो।' जब तक सीखता हूँ तब तक बताता 'ऐसे लिखो, ऐसा होना चाहिए। सुर्खी ऐसी होनी चाहिए।' उन्होंने मुझे उर्दू सिखा दी। और मुझे सच अगर पूछो तो साहित्य में तो नही मैंमोयल में मुझे उस सारी शिक्षा से बहुत लाभ हुआ। पूरी जर्नलिज्म [illegible] है।

आपको तो पता नहीं चल सकता कि कहाँ मैने उसको फिट किया है। कब या कहाँ मैंने उसका उपयोग किया है। लेकिन ये जो चेहरे अनेक हैं इसमें उस ज्ञान को मैने लगाया। नॉवलों में नहीं, कहानियों में नहीं, कविता में भी नहीं, और कहीं नहीं...।

प्र० : अच्छा, अश्क जी, आप जैसा तुर्रम खाँ आदमी, बचपन में भी जिस तरह आप बता रहे हैं कि अखबार में रह छोड़ा। अमुक के साथ रह छोड़ा जालंधर छोड़ दिया। घर से निकाल दिये। सारी कठिनाइयों और सारी दिक्कतें महसूस करते हुए और साहित्य में भी लगे रहे। उस माहौल में जब कि लगभग स्वतंत्रता का आंदोलन शुरू हो चुका था हमारा ख्याल है कि जबकि बात आप बता रहे हैं, उस समय असहयोग आन्दोलन शुरू हो चुका था और उस माहौल में जालंधर और लाहौर अपेक्षाकृत गरम ही शहर माने जाते थे। उस शहर में क्या असर था उस माहौल का? आप उससे प्रभावित हुए कि नहीं हुए ?

उ० : आइ वाज टू यंग। पहली बात यह है कि पहला जो याद आता है वह छठी जमात में था। बैठा हुआ था कि बाहर कोई आकर बोला कि "बाहर भाषण हो रहा है। स्कूल पर भीड़ इकट्ठी हो रही है। और एकदम कहा - खाली कर दो स्कूल को।" वह प्रिंसिपल पर चिल्लाते - चिल्लाते रहे और किसी ने सुना नहीं और सारे लड़के बाहर आ गये। कुछ नहीं पता। सब बाहर आ गये। क्लास में किसी ने कह दिया - 'बाहर आ जाओ।' **महात्मा गाँधी** का एक वहाँ से गुजरना हो चुका था कुछ दिन पहले। महात्मा गाँधी घूम गये थे।

देखने को नहीं मिला। बहुत छोटा था मैं तीन-चार बार पहले मेरे दादा मुझे ले गये। कन्धे पे बिठाया फिर भी **महात्मा गांधी** की शक्ल नजर नहीं आयी। बेपनाह भीड़ थी। लेकिन तीन चार साल के बाद की बात है जबकी मैं बात करता हूँ, छठी जमात में। पहले जरा और पहले समझ लो।

तो वह जूलूस बड़ा लम्बा था और उसमें गाने गाये गये थे

"मारो सूद दे गोले लंगा शायर नूं - शायर नूं
मारो सूद दे गोले लंगा शायर नूं"

प्र० : माहौल का, अभी अश्क जी आप उल्लेख कर रहे थे कि आवाजें सुनाई पड़ रही थीं और जनरल डायर ने जलियां वाले बाग में गोलियाँ चला दी थीं। तो लोग किस तरह से किस्से-कहानियाँ गढ़-गढ़ कर बताते थे ? और उन दिनों इस प्रकार का माहौल धीरे-धीरे पंजाब में, विशेष रूप से लाहौर में और जालंधर में विकसित हो रहा था? मैं यह जानना चाहता था कि उन दिनों आप जिस किशोरावस्था में थे आपके दिमाग पर इसका किस तरह का असर पड़ रहा था?

उ० : भई बात यह कि उत्साह तो बढ़ा था! आइ वाज यंग एण्ड टू इल-बीमार लड़का था। और जाहिर है कि डरपोक था। भई जो आदमी बहुत ही कमजोर हो, वह जो मारपीट हो रही हो तो जाहिर है कि घबरायेगा ही। दूसरे, यह बात थी कि शुरू में मेरी नजर में एक विश्लेषण-प्रक्रिया - एक तर्जिया करने की बात, एक गहरे में देखने की बात मुझे (नेताओं की) आई, जो नेता लोग थे उनकी द्वैत वृत्ति मुझे बहुत खलती थी। और यह बचपन से खलती थी। सब पिट जाते थे। मैं एक बार तो पिटा, पिटा। फिर नहीं पिटा। क्या करता था वह तो एक लम्बा प्रकरण है? तो वह तभी था कि मैं दूसरे को जानता हूँ।

लोग मुझे नहीं जानते। सब कुछ अपने बारे में बता दूँ तो फिर भी नहीं जानते। मेरे बारे में जितनी बातें होती हैं उनमें सौ में से 75 गलत होती हैं। मैं बताता हूँ - झूठ नहीं बोलता, तो उसको कोई मानता नहीं। जाहिर है कि जो आप बोलते हैं तो गलत ही है। पर मैं यह देखता था कि ये जो नेता हैं, वे गड़बड़ हैं। अब जैसे हमारे वहाँ हुआ कि एक **आन्दोलन** शुरू हुआ। एक जलसा हुआ मैं आ गया। कई आन्दोलन हुए हैं जैसे तुम जानते हो, जैसे **स्वराज आन्दोलन** हुआ, **लाजपत राय** आये उनका भाषण सुना वगैरह-वगैरह। तो एक वहाँ वंशी सब्जी फरोश था। मोहल्ला है सोया

पड़ा है एक निम्न मध्य वर्ग का मोहल्ला है। छोटे-छोटे काम करने वाले लोग हैं और सड़क से घण्टी बजाता हुआ टन-टन वंशी और आज वहाँ-वहाँ यह जलसा हुआ वह सभा होगी वहाँ।

वह सभा होगी और वहाँ ये भाषण देंगे। और फलां होगा तो आन्दोलन समझे कि जालन्धर में शुरू होगा। तो जहाँ वंशी घण्टी बजाता मोहल्ला-मोहल्ला घूमा, शहर में आन्दोलन शुरू हो गया। वह सब्जी बेचता था। आन्दोलन बन्द हो गया। लोग जेल गये। वह भी जेल चला गया। आ गया।

ऐसा ही एक आदमी था, जो ग्यारह साल जेल जाता रहा। लेकिन जैसे सन्नो देवी लज्जावती देवी ये जो नेता थे इनको मैंने देखा कि जुलूस के आगे-आगे जा रहे हैं और जरा-सा आगे झगड़ा हुआ, तो भाग गये। और लोग मर गये तो ये जो द्वैतवृति थी मैंने इस आन्दोलन में देखी।

प्र० : अश्क जी ऐसा हुआ होगा कि मान लीजिए कि सीधे आन्दोलन में आप नहीं गये तो ऐसे बहुत - से संगठन होंगे उन दिनों बने कि जो सामाजिक काम करते थे। जैसे **महावीर दल** है, **सेवा समिति** है **स्काउट गाइड** है?

उ० : हाँ चूँकि मैं जरा-सा एफ० ए० में वर्जिश करने लगा। और एक गुण्डे को मैंने पीट दिया। और मेरा सारा व्यक्तित्व एक घटना से बदल गया। यह एक दिन तक मैं रो रहा हूँ, मेरे भाई मुझे तंग कर रहे हैं। उसके बाद मेरे भाई दुखी हो गए। यानी कि मैंने तंग करना शुरू कर दिया। जैसे कि मैं एक किस्सा बताता हूँ। इन्टरेस्टिंग है।

हमारे पिता तो खाने-पीने, मौज वाले थे। दसुहे में रहते थे। फोटो खिचवायेंगे। तब कोई गद्दी वाला कस्बा था। वहाँ से फोटोग्राफर आया। उसने ली फोटो-वोटो। फोटो आ गयी। पिता की फोटो तो बहुत अच्छी थी। बाकी जितने भाई ऐसे बैठे हुए हैं। उनमें कुछ न कुछ नुक्स। उनमें मेरे बड़े भाई साहब यूँ ऐसे रखे हुए, बड़ी अदा से छड़ी यूँ रखे पगड़ी बांधे हुए बैठे हैं एक आँख ही गायब है। मैं अपने आपको यूज़लैस आदमी समझता हुआ... पगड़ी लटके दार बाबू जी की तरह पहलवानों की, बाँधे हुए। गाल पिचके हुए। बीमार आदमी मैं दो साल रहा हूँ। मलेरिया नौ महीने रहा। लेकिन अपने आप को खूबसूरत लगता हूँगा। तो कोट-वोट पहने हुए सिल्क का, और कुर्सी पे बैठा हुआ हूँगा। तो नीचे पैर नहीं आ पा रहे। तो पैर तो लगने चाहिए। वरना मैं तो छोकरा लगूँगा। तो पैर को ऐसे अकड़ा के रखे हुए बैठा हूँ।

अब वह जाहिर है कि बड़ी हवन्नक तस्वीर लगती थी। और मेरे भाई मुझको बहुत चिढ़ाते थे। मेरे बड़े भाई ले आयें, अन्दर से तस्वीरें और साहब मुझे रुला देते थे। बाइ दैट टाइम, मैं कॉलिज में चला गया। वर्जिश करने लगा। और एक गुण्डे को मैने पीट दिया। पीट इसलिए दिया कि दूसरा चारा कोई नहीं था। पिता ने बता रखा था कि - "अव्वल मारे तो सो गुरु का चेला।" उनको मेरी बड़ी चिन्ता थी। कहते थे कि तुम बाजार में लड़ो। और इससे पहले कि दूसरा मारे, तुम कितने भी कमजोर क्यों न हो, उतार के जूता, दो मार दो। वह बाद में मार देगा, शोर मचा देना। लोग

इकट्ठे हो जायेंगे। वह जो दो, तुम मार दोगे वे तो साले के, लग ही जायेंगे।" कॉलेज में ऐसा हुआ।

तो मैंने उसको पीट दिया और वह रोने लगा। साहब मेरे ही जैसा मैं जरा तगड़ा हूंगा। वह गुण्डा मशहूर था। उसने चाकू मार दिया। हौसले की बात है और तगड़े-तगड़े उससे डरते थे। प्रिंसिपिल डरते थे। जैसे होता है। लेकिन वह पिट गया तो पिट गया। और खत्म हो गया। और मुझमें एक नया उत्साह, एक नया जोश...।

और एक दिन मैंने निकाल ली तस्वीर भाई साहब की। सोच के और देखिये, क्या नखरे से बैठे हैं। आँख नहीं है, और मेरे भाई ! मज़ाक करना आसान है मगर मज़ाक नहीं बर्दाश्त। दो-तीन बातें मैंने कहीं तो भाई साहब ने, फाड़ कर के तीनों तस्वीरें जला दीं।

मुझे बड़ा अफसोस है, क्योंकि अगर आज वह तस्वीर होती तो हम हँसी के मारे लोट-पोट हो जाते...। □